गायत्री की शक्ति और सिद्धि

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

गायत्री की असंख्य शक्तियाँ

संसार में जितना भी वैभव, उल्लास दिखाई पड़ता है या प्राप्त किया जाता है वह शक्ति के मूल्य पर ही मिलता है। जिसमें जितनी क्षमता होती है वह उतना ही वैभव उपार्जित कर लेता है। जीवन में शक्ति का इतना महत्वपूर्ण स्थान है कि उसके बिना कोई आनन्द नहीं उठाया जा सकता। यहाँ तक कि अनायास उपलब्ध हुए भोगों को भी नहीं भोगा जा सकता। इंद्रियों में शक्ति रहने तक ही विषय भोगों का सुख प्राप्त किय जा सकता है। ये किसी प्रकार अशक्त हो जाँय तो आकर्षक से आकर्षक भोग भी उपेक्षणीय और घृणास्पद लगते हैं। नाड़ी संस्थान की क्षमता क्षीण हो जाय तो शरीर का सामान्य क्रिया कलाप भी ठीक तरह नहीं चल पाता। मानसिक शक्ति घट जाने पर मनुष्य की गणना विक्षिप्तों और उपहासास्पदों में होने लगती है। धनशक्ति न रहने पर दर-दर का भिखारी बनना पड़ता है। मित्रशक्ति न रहने पर एकाकी जीवन सर्वथा निरीह और निरर्थक होने लगता है। आत्मबल न होने पर प्रगति के पथ पर एक कदम भी यात्रा नहीं बढ़ती। जीवनोद्देश्य की पूर्ति आत्मबल से रहित व्यक्ति के लिए सर्वथा असंभव ही है।

अतएव शक्ति का संपादन भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए नितांत आवश्यक है। इसके साथ यह भी जान ही लेना चाहिए कि भौतिक जगत में पंचभूतों को प्रभावित करने तथा आध्यात्मिक, विचारात्मक, भावात्मक और संकल्पात्मक जितनी भी शक्तियाँ हैं उन सब का मूल उद्गम एवं असीम भण्डार वह महत्तत्व ही है जिसे गायत्री के नाम से संबोधित किया जाता है।

भारतीय मनीषियों ने विभिन्न शक्तियों को देव नामों से संबोधित किया है। यह समस्त देव शक्तियाँ उस परम् शक्ति की किरणें ही हैं, उनका अस्तित्व इस महत्व के अन्तर्गत ही है। विद्यमान सभी देव शक्तियाँ उस महत्व के ही स्फुलिंग हैं, जिसे अध्यात्म की भाषा में गायत्री कहकर पुकारते हैं। जैसे जलते हुए अग्नि कुण्ड में चिनगारियाँ उछलती हैं, उसी प्रकार विश्व की महान शक्ति-सरिता गायत्री की लहरें उन देवशक्तियों के रूप में देखने में आती हैं। सम्पूर्ण देवताओं की सम्मिलित शक्ति को गायत्री कहा जाय तो उचित होगा।

इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो प्रतीत होगा कि हमारे महान् पूर्वजों के चरित्र को उज्ज्वलतम तथा विचारों को उत्कृष्ट रखने के अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व को महानता के शिखर तक पहुँचाने के लिए उपासनात्मक सम्बल गायत्री महामन्त्र को ही पकड़ा था, और इसी सीढ़ी पर चढ़ते हुए वे देव पुरुषों में गिने जाने योग्य स्थिति प्राप्त कर सके थे । देवदूतों, अवतारों, गृहस्थियों, महिलाओं, साधु, ब्राह्मणों, सिद्ध पुरुषों का ही नहीं साधारण सद्गृहस्थों का उपास्य भी गायत्री ही रही है । और उस अवलम्बन के आधार पर न केवल आत्म-कल्याण का श्रेय साधन किया है वरन् भौतिक सुख-सम्पदाओं की सांसारिक आवश्यकताओं को भी आवश्यक मात्रा में उपलब्ध किया है ।

वेद, उपनिषद से लेकर पुराण-शास्त्रों और रामायण, महाभारत आदि तक ऐसा कोई भी आगम-निगम ग्रंथ नहीं है, जिसमें गायत्री महाशक्ति की अभिवन्दना न की गई हो । ऋग्वेद में ६।६२।१०, साम्वेद में २।८।१२, यजुर्वेद वा. सं. में ३।३५-।२२।९-३०।२-३६।३, अथर्ववेद में १९।७१।१ में गायत्री की महिमा विस्तार पूर्वक गाई गई है । ब्राह्मणग्रन्थों में गायत्री मन्त्र का उल्लेख अनेक स्थानों पर है । यथा-ऐतरेय ब्रह्मण ४।३२।२-५।५।६-१३।८-१९।८, कौशीतकी ब्राह्मण २३।३-२६।१०, गोपथ ब्राह्मण १।१।३४,दैवत ब्राह्मण ३।२५, शतपथ ब्राह्मण २।३।४।३९-२३।६।२।९- १४।९।३।११, तैत्तरीय सं. में १।५।६।४-४।१।११।१, मैत्रायणी सं. ४।१०।३- १४९।१४। आरण्यकों में गायत्री का उल्लेख इन स्थानों पर है-तैत्तरीय आरण्यक १ ।११।२१०।२७।१, वृहदारण्यक ६।३।११।४।८, उपनिषदों में इस महामन्त्र की चर्चा निम्न प्रकरणों में :- नारायण उपनिषद् ६५-२, मैत्रेय उपनिषद् ६।७।३५, जैमिनी उपनिषद् ४।२८।१, श्वेताश्वर उपनिषद ४।१८।सूत्र ग्रंथों में गायत्री का विवेचन निम्न प्रसंगों में आया है-आश्वालायन श्रौत सूत्र ७।६।६-८।१।१८, शांखायन श्रौत सूत्र २।१०।२-2।७-५।५।२- १०।६।१०-९।१६ आप स्तम्भ श्रौत सूत्र ६।१८।१ शंखायन गृह्य सूत्र २।५।१२, ७।१९, ६।४।८ कौशिकी सूत्र ९१।६ गृह्य सूत्र २।४।२१ आप स्तम्भ गृह्य सूत्र २।४।२१ बोघायन घ. शा. २।१०।१७।१४ मान. ध. शा. २।७७ ऋग्विधान १।१२।५ मान. गृ. स. १।२।३-४।४।८-५।२

गायत्री का महत्त्व बताते हुए महर्षियों ने एक स्वर से गाया है-

"गायत्री वेदमातरम् ।"

अर्थात्–गायत्री वेदों की माता–ज्ञान का आदि कारण है ।

इस उक्ति में गायत्री को समस्त ज्ञान–विज्ञान को, शक्ति–साधनों को, व्यक्तित्व, समाज और संस्कृति को ऊँचा उठाने वाली कहा गया हैं, इन सब की गंगोत्री बता दिया गया है ।

कहा जा चुका है कि संसार में कुछ भी प्राप्त करने का एकमेव मार्ग शक्ति साधन है और परम कारुणिक ईश्वरीय शक्ति ने इस निखिल ब्रह्माण्ड में अपनी अनन्त शक्तियाँ बिखेर रखी हैं । उनमें से जिनकी आवश्यकता होती है उन्हें मनुष्य अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर सकता है । विज्ञान द्वारा प्रकृति की अनेकों शक्तियों को मननुष्य ने अपने अधिकार में कर लिया है । विद्युत, ताप, प्रकाश, चुम्बक, शब्द अणु–शक्ति जैसी प्रकति की कितनी ही अदृश्य और अविज्ञात शक्तियों को उसने ढूँढ़ा और करतलगत किया है, परब्रह्म की चेतनात्मक शक्तियाँ भी कितनी ही हैं, उन्हें आत्मिक प्रयासों द्वारा करतलगत किया जा सकता है । मनुष्य का अपना चुम्बकत्व असाधारण है । वह उसी क्षमता के सहारे भौतिक जीवन में अनेकों को प्रभावित एवं आकर्षित करता है । इसी चुम्ब्कत्व शक्ति के सहारे वह व्यापक ब्रह्मचेतना के महासमुद्र में से उपयोगी चेतन तत्वों को आकर्षित एवं करतलगत कर सकता है ।

इन सभी शक्तियों में सर्वप्रमुख और सर्वाधिक प्रभावशाली प्रज्ञाशक्ति है । प्रज्ञा की अभीष्ट मात्रा विद्यमान हो तो फिर कोई ऐसी कठिनाई शेष नहीं रह जाती जो नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने से वंचित रख सके । श्रम और मनोयोग तो आत्मिक प्रगति में भी उतना ही लगाना पर्याप्त होता है, जितना कि भौतिक समस्याऐं हल करने में आये दिन लगाना पड़ता हैं । महामानवों को अधिक कष्ट नहीं सहने पड़ते जितने कि सामान्य जीवन में आये दिन हर किसी को सहने पड़ते हैं । लोभ और मोह की पूर्ति में जितना पुरुषार्थ और साहस करना पड़ता है उससे कम में ही उत्कृष्ट आदर्शवादी जीवन का निर्धारण किया जा सकता है । मूल कठिनाई एक ही है । प्रज्ञा–प्रखरता की । वह प्राप्त हो सके तो समझना चाहिए कि जीवन को सच्चे अर्थो में सार्थक बनाने वाली, ऋद्धि–सिद्धियों की उपलब्धियों से भर देने वाली सम्भावनाओं को प्राप्त कर सकने में अब कोई कठिनाई शेष नहीं रह गई ।

गायत्री महाशक्ति को तत्व ज्ञानियों ने सर्वोपरि दिव्य क्षमता कहा

है । उसका अत्यधिक महात्म्य बताया है । गायत्री–प्रज्ञातत्व का ही दूसरा नाम है । इसे दूरदर्शी विवेकशीलता एवं आत्मोत्कर्ष के लिए अभीष्ट बल प्रदान करने वाली साहसिकता भी कह सकते हैं । आत्मिक प्रगति के लिए किये जाने वाले अभीष्ट पुरुषार्थो में गायत्री उपासना को अग्रणी माना गया है, यह विशुद्ध रूप से प्रज्ञा को प्राप्त करने की वैज्ञानिक पद्धति है ।

'प्रज्ञा' शक्ति मनुष्य को आत्मिक दृष्टि से सुविकसित एवं सुसम्पन्न बनाती है । वह अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाकर महामानवों के उच्च स्तर तक पहुँचता है और सामान्य जीवात्मा न रहकर महात्मा, देवात्मा एवं परमात्मा स्तर की क्रमिक प्रगति करता चला जाता है । जहाँ आत्मिक सम्पन्नता होगी वहाँ उसकी अनुचरी भौतिक समृद्धि की भी कमी न पड़ेगी । यह बात अलग है कि आत्मिक क्षमताओं का धनी व्यक्ति उन्हें उद्धत प्रदर्शन में खर्च न करके किसी महान प्रयोजन में लगाने के लिए नियोजित करता रहे और सांसारिक दृष्टि से निर्धनों जैसी स्थिति में बना रहे । इसमें दूसरों को दरिद्रता प्रतीत हो सकती है, पर आत्मिक पूँजी का धनी अपने आप में संतुष्ट रहता है और अनुभव करता है कि वह सच्चे अर्थों में सुसम्पन्न है ।

गायत्री उपासना उस 'प्रज्ञा' को आकर्षित करने और धारण करने की अद्‌भुत प्रक्रिया है जो परब्रह्म की विशिष्ट अनुकम्पा, दूरदर्शी–विवेकशीलता और सन्मार्ग अपना सकने की प्रखरता के रूप में साधक को प्राप्त होती है । इस अनुदान को पाकर वह स्वयं धन्य बनता है और समूचे वातावरण में मलय पवन का संचार करता है । उसके व्यक्तित्व से सारा सम्पर्क क्षेत्र प्रभावित होता है और सुखद सम्भावनाओं का प्रवाह चल पड़ता है ।

सं उतत्वः पश्यन्नददर्शवाचमुतत्तः श्रृवन्नश्रृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मैतन्वां विस्रसे जायेपत्यवउशतीसुवासाः ।।

–सरस्वती रहस्योपनिषद्

हे भगवती वाक् ! तुम्हारी कृपा से ही सब बोलते हैं । तुम्हारी कृपा से ही विचार करना संभव होता है । तुम्हें जानते हुए भी जान नहीं पाते । देखते हुए भी नहीं देख पाते । जिस पर तुम्हारी कृपा होती है वही तुम्हें समझ पाता है ।

यह दृश्य जगत् पदार्थमय है । इसमें जो सौन्दर्य, वैभव, उपभोग, सुख दिखाई पड़ता है, वह ब्रह्म की अपरा प्रकृति का अनुदान है । यह सब गायत्रीमय है । सुविधा की दृष्टि से इसे सावित्री नाम दे दिया गया है । ताकि पदार्थ क्षेत्र में उसके चमत्कारों को समझने में सुविधा रहे । गायत्री की स्थूलधारा सावित्री को जो जितनी मात्रा में धारण करता है, वह भौतिक क्षेत्र में उतना ही समृद्ध सम्पन्न बनता जाता है । इस विश्व में बिखरी हुई शोभा सम्पन्नता को उसी महाशक्ति का इन्द्रियों से अनुभव किया जा सकने वाला स्वरूप कह सकते हैं ।

गायत्री की चेतनात्मक धारा सद्बुद्धि के—ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में काम करती है और जहाँ उसका निवास होता है, वहाँ ब्राह्मणत्व एवं देवत्व का अनुदान बरसता चला जाता है, साथ ही आत्मबल के साथ जुड़ी हुई दिव्य विभूतियाँ भी उस व्यक्ति में बढ़ती चली जाती हैं । इस तथ्य का उल्लेख शास्त्रों में इस प्रकार हुआ है—

भूलोकस्यास्य गायत्री कामधेनुर्मता बुधैः ।
लोक आश्रायणे नामुं सर्व मेवाधि गच्छति ।।

—गायत्री मंजरी

"विद्वानों ने गायत्री को भूलोक की कामधेनु माना है । उसका आश्रय लेकर हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं ।"

तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि ।
प्रियं देवानामनाधृष्टदेवयजनमसि
गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि
नहि पद्यसे । ते नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परो—
रजसेऽसा वदो मा प्रापत् । —वृ.५।१४।७

हे गायत्री ! तुम तेज रूप हो, निर्मल प्रकाश रूप हो, अमृत एवं मोक्ष रूप हो, चित्तवृत्तियों का निरोध करने वाली हो, देवों की प्रिय आराध्या हो, देव पूजन का सर्वोत्तम साधन हो

हे गायत्री ! तुम इस विश्व ब्रह्माण्ड की स्वामिनी होने से एक पदी, वेद विद्या की आधारशिला होने से द्विपदी, समस्त प्राण—शक्ति का संचार करने से त्रिपदी और सूर्य—मण्डल के अन्तर्गत परम तेजस्वी पुरुषों की आत्मा होने से चतुष्पदी हो । रज से परे हे भगवती ! श्रद्धालु साधक सदा तुम्हारी उपासना करते हैं ।

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसाराः ।

जिससे समस्त शास्त्रों के सार तत्व को जाना जाता है, वह मेधा शक्ति आप ही हैं ।

विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां
शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव ।
त्वं कीर्तिकांतिकमलामलतुष्टिरूपा
मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके ।।
गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव
स्वाहा स्वधा भगवती सगुणाऽर्धमात्रा ।
आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्या
संजीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम् ।। —देवी भागवत्

आप ही बुद्धिमानों में बुद्धि, बलवानों में शक्ति हैं आप ही कमला, निर्मला, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि और मुक्ति प्रदान करने वाली हैं ।

वेद की प्रधान शक्ति गायत्री आप ही हैं । स्वाहा, सगुण, अर्धमात्रा आप ही को कहते हैं । देवता और प्राणियों का निस्तार आप ही करती हैं । आपने ही वेद और तन्त्र—आगम और निगम रचे हैं ।

स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धिः
जरापुष्टितुष्टी धृतिः कांतिशांती ।
सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे
त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम् ।।
उषसीं चैव गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम् ।
वेदानां मातरम् पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम् ।

—देवी भागवत्

स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, विद्या, लक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और विश्व बीज तुम्ही हो । उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, पृथ्वी, अजा, कौशिकी उसे वेदमाता कहते हैं ।

स्वस्ति श्रद्धातिमेधा मधुमति मधुरासंशया प्रज्ञक्रांतिः ।
विद्या बुद्धिर्बलं श्रीरतुलधनवति सौम्यवाक्यावलीच ।।

अर्थात्—वह स्वस्ति, श्रद्धा, अतिमेधा, मधुमती, मधुरा, असंशया,

प्रज्ञकान्ति, विद्या, बुद्धि, बल, श्री, अतुल धन वाली है और अत्यंत सौम्य वचनों वाली है ।

मेधा प्रज्ञा प्रतिष्ठा मृदुमधुरगिरा पूर्णविद्या प्रपूर्णा ।
प्राप्ताप्रत्यूषचिन्ता प्रणवपरवशा प्राणिनां नित्यकर्मा ।।

अर्थात्–वह मेधा की प्रज्ञा प्रतिष्ठा–मृदु और मधुर वाणी वाली, पूर्ण से अपूर्णा प्राप्त प्रत्यूष काल में चिन्ता और प्रणव के परवशा तथा प्राणियों का नित्य कर्म स्वरूपा है ।

प्रज्ञा तत्व का प्रधान कार्य मनुष्य में सत्–असत् निरूपिणी बुद्धि का विलास परिष्कार करना है । इसके मिलने का प्रथम चमत्कार यह होता है कि मनुष्य वासना–तृष्णा की प्रवृत्तियों से ऊँचा उठकर मनुष्योचित कर्म, धर्म को समझने और तदनुसार उत्कृष्टतावादी रीति–नीति अपनाने के लिए अन्तःप्रेरणा प्राप्त करता है और साहसपूर्वक आदर्शवादी जीवन जीने की दिशा में चल पड़ता है । ऐसे व्यक्ति स्वभावतः दुष्कर्मों से विरत हो जाते हैं और उनके क्रिया कलाप में से फिर अवांछनीयताऐं एक प्रकार से चली ही जाती हैं । इस परिवर्तन को धर्मस्थापना और अधर्म निवारण के रूप में देखा जा सकता है ।

य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम् ।
तत्वेन भरत श्रेष्ठ, स लोके न प्रणश्यति ।।

(महाभारत भी. प. १।४।१६)

हे राजन ! जो इस सर्वगुण सम्पन्न परम पुनीत गायत्री के तत्व ज्ञान को समझकर उसकी उपासना करता है उसका संसार में कभी पतन नहीं होता ।

मष्तिष्क को, सिर को गायत्री का केन्द्र संस्थान बताया गया है । इस प्रतिपादन का तात्पर्य गायत्री को दूसरे शब्दों में विवेक–युक्त बुद्धिमत्ता ही ठहराया गया है । सिर उसी का तो स्थान है । कहा भी है–

अस्याश्च बुद्धेर्महत्त्वं स्वेतरसकलकार्यव्यापकत्वाद् महैश्वर्याच्च मन्तव्यम् ।

(सांख्य दर्शन २।१३) विज्ञानचक्षु मापक

यह बुद्धि ही संसार के समस्त कार्यों में प्रकाशित है । इसी की बड़ी सामर्थ्य है ।

मस्तिष्क की तीक्ष्णता—चतुरता, सूझबूझ, स्मरण क्षमता, व्युत्पन्न मति को आमतौर से बुद्धिमत्ता समझा जाता है । पर अध्यात्म के चर्चा प्रसंग में दूरदर्शी विवेकशीलता को प्रज्ञा कहा जाता है । यही आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता है । गायत्री महाशक्ति का अवतरण इसी प्रज्ञा शक्ति के रूप में होता है । साधक को प्रत्यक्ष उपहार यही मिलता है कि वह अपनी चिन्तन क्षमता को निकृष्ट प्रयोजनों से विरत करके उस तरह सोचना आरम्भ करता है, जिससे जीवनचर्या का सारा ढाँचा ही बदल जाय और मात्र आदर्शवादी गतिविधियों को कार्यान्वित करने की ही संभावना शेष रहे ।

सद्बुद्धि से प्रेरित सुव्यवस्थित क्रिया—पद्धति और उत्कृष्ट रीति—नीति अपनाने वाला निश्चित रुप से सर्वतोमुखी प्रगति के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है । जिन ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिए लोग लालायित रहते हैं, वे प्रबल पुरुषार्थ के आधार पर ही पाये जा सकते हैं । देवता किसी को छप्पर फाड़कर अशर्फियों का घड़ा नहीं दे जाते । वे मात्र ऐसी सत्प्रेरणा उल्लसित करते हैं, जिससे चिन्तन और कर्तृत्व के दोनों ही क्षेत्र सद्ज्ञान एवं सत्कर्म से ओतप्रोत हो चलें । प्रबल पुरुषार्थ से तात्पर्य इसी क्षेत्र में आगे बढ़ने से है, अन्यथा सामान्य पुरुषार्थ तो दुष्ट, दुर्गुणी भी करते ही हैं । जहाँ सद्बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म परायणता का प्रबल पुरुषार्थ जगेगा, वहाँ किसी को किसी वस्तु का, किसी बात का, अभाव नहीं रहेगा ।

गायत्रं हि शिरः । शिरो गायत्र्यः ।
अर्कवतीषु गायत्रीषु शिरो भवति ।

—ताण्ड्य ब्राह्मण

सूर्य के समान तेजस्वी गायत्री का स्थान शिर है ।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि। (गीता ७।१०)

बुद्धिमानों में बुद्धि मैं ही हूँ ।

अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्ति स्मृतिस्तथा ।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ।।

—देवी भागवत्

अर्थात्—मैं ही बुद्धि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, प्यास, क्षमा हूँ ।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् । यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तम् ।

ग्वाला जिस प्रकार लाठी लेकर पशुओं की रक्षा करता है, उस तरह देवता किसी की रक्षा नहीं करते । वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को सन्मार्ग पर नियोजित कर देते हैं ।

गायत्री का निवास शिरो भाग में बताया गया है । देवताओं का निवास ब्रह्मरन्ध्र में, मस्तक में बताया गया है । सैकड़ों दिव्य शक्तियों का केन्द्र होने के कारण उस केन्द्र को शतदल कमल कहते हैं । यह संख्या हजारों, असंख्यों हैं । इसलिए उसे सहस्र दल कमल कहते हैं ।

कलुष और कल्मषों का निवारण होने पर आत्मा के भीतर की दिव्य विशेषतायें सहज ही प्रकट होती और प्रखर बनती हैं । अंगारे पर चढ़ी राख की परत को हटा देने पर उसकी धूमिल आभा पुनः प्रकट होती है और उसका वर्चस्व सहज ही दृष्टिगोचर होने लगता है । यही वह स्थिति है जिसमें कई प्रकार की दिव्य विशेषताओं का आभास मिलता है । दिव्य जीवन स्वभावतः रहस्यमय सिद्धियों का भण्डार होता है । वह अन्तः-क्षेत्र में स्वर्ग और मुक्ति जैसा आनन्द उठाता है और अपने साथ-साथ अनेकों को धन्य बनाता है । शंख स्मृति का वचन है-

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।
गायत्री वेद जननी गायत्री पापनाशिनी ।।
गायत्र्या परमं नास्ति दिवि चेह न पावनम् ।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।
गायत्रीजाप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ।।
तस्मिन्न तिष्ठते पापमबबिन्दुरिव पुष्करे ।।
जपेनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।।
उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसस्मृतः ।
नोच्चैर्जपं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ।।
सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ।
गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ।
गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ।।

—शंख स्मृति १२।२४ से ३१

गायत्री का जप करने वाला अभीष्ट लोकों को प्राप्त होता है और उसकी अभीप्सित कामनायें पूर्ण होती हैं ।

गायत्री वेद जननी है, पापों का नाश करने वाली है । इससे बड़ी पवित्र करने वाली शक्ति न इस लोक में है न स्वर्ग लोक में । नरक रूपी समुद में गिरे हुए को वह हाथ का सहारा देकर उबारती है । अतएव गायत्री की नित्य उपासना करनी चाहिए और हवन करना चाहिए । गायत्री जप करने वाला कमलपत्रवत रहता है । इसके ऊपर पाप नहीं चढ़ सकता ।

गायत्री जप से निःसन्देह समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । अन्य कोई साधना न भी करे तो भी ब्राह्मण गायत्री का आश्रय लेकर पार हो जाता है । इस उपासना से स्वर्ग भी मिलता है और मोक्ष भी । अतएव नित्य नियमित रूप से गायत्री भक्ति पूर्वक जप साधना करनी चाहिए ।

गायत्री मन्त्र में जिस प्रज्ञा को धियः शब्द से संबोधित किया है और अन्तः चेतना के कण—कण में ओत—प्रोत करने की घोषणा की है, उसी की शास्त्रकारों ने अन्यत्र ऋृतम्भरा प्रज्ञा 'भूमा' आदि नामों से चर्चा की है । यह शब्द सामान्य व्यवहार बुद्धि के लिए प्रयुक्त नहीं होता । चतुरता, कुशलता एवं जानकारी की जो शिक्षा स्कूलों, कारखानों एवं बाजारों में सीखने को मिलती है, 'प्रज्ञा' उससे सर्वथा भिन्न है । जिस विद्या के आधार पर आत्म—बोध होता है—जीवन का महत्व, स्वरूप, लक्ष्य एवं उपयोग विदित होता है, सत्—असत् का उचित—अनुचित का भेद कर सकने वाली नीर—क्षीर विवेचनी वृत्ति विकसित होती है, उसी को गायत्री कहा जा सकता है ।

गायत्री उपासना के द्वारा प्रज्ञा शक्ति प्रप्त करने के साथ—साथ साधक को सभी विशिष्ट क्षमताएँ प्राप्त होती हैं, जिनका वर्णन ब्रह्मविद्या के अवगाहन तथा योग—तप आदि के साधना—विधान के साथ जुड़ा हुआ है । गायत्री उपासक की आत्मिक पूँजी निरन्तर बढ़ती चली जाती है और वह यदि धैर्य और साहस के साथ आत्म संशोधन करते हुए अपने मार्ग पर बढ़ता ही चले तो एक दिन नर से नारायण स्तर पर पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष बन कर रहता है । कहा भी है—

योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् ।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धियोगिनी ।।
विद्याविद्यावतांत्वञ्च बुद्धिर्बुद्धिमतांसताम् ।
मेधास्मृतिस्वरूपाचप्रतिभाप्रतिभावताम् ।।
वन्द्या पूज्या स्तुतात्वञ्चब्रह्मादीनाञ्च सर्वदा ।
ब्रह्मण्यरूपाविप्राणां तपस्याचतपस्विनाम् ।।

—ब्रह्म वैवर्त पुराण

आप योग निद्रा, योग रूपा, योग दात्री हैं जो कि योगियों को योग प्रदान किया करती हैं, आप सिद्धों को सिद्धियाँ देने वाली हैं । आप सिद्धि स्वरूपा और सिद्धियों की योगिनी हैं ।

आप विद्वानों की विद्या और बुद्धिमान सत्पुरुषों की बुद्धि हैं । जो प्रतिभा वाले पुरुष हैं उनकी आप मेधास्मृति और प्रतिभा के स्वरूप वाली हैं ।

आप ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं द्वारा पूजित हैं । ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व और तपस्वियों में तप आप ही हैं ।

वृहदारण्यक उपनिषद में गायत्री को ब्रह्म विद्या का, वेद विद्या का, परब्रह्म शक्ति का स्वरूप बताया गया है और कहा गया है कि इस महाशक्ति का आश्रय लेकर साधक ब्रह्म तेज का अधिकारी बनता है और वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है जो इस संसार में पाने योग्य है ।

संसार में जितने भी अभाव और कष्ट हैं, जितनी भी आधि व्याधियाँ हैं उन सब को शक्ति की न्यूनता का प्रतिफल ही समझा जाना चाहिए । आत्म शक्ति के अभाव में मनुष्य की विचारणा निकृष्ट बनती है और प्रतिभा के अभाव में सुख, साधनों से वंचित रहना पड़ता है, अस्तु शक्ति संचय के निरन्तर प्रयत्न करने चाहिए । भौतिक समर्थता किस प्रकार प्राप्त होती है, इसे सब जानते हैं पर आत्मिक तेजस्विता किस प्रकार पाई जा सकती है इसका मार्ग अध्यात्म विज्ञान में बताया गया है । गायत्री साधना उसी के लिए की जाती है । शक्ति के अभाव में दुर्बलता और दुर्गति होने की चर्चा इस प्रकार है —

अनुमानमिदं राजन्कर्त्तव्य सर्वथा बुधैः ।
दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान् ।।
जनानार्तांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा ।
दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ ।।

अतृप्तान्भोजने भोगे सदार्तानजितेन्द्रियान् ।
तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाधिपरिपीडितान् ।।

—देवी भागवत

हे राजन ! तुम कहीं पर लोगों को रोगी, दीन दरिद्र, भूखे, प्यासे, शठ, आर्त, मूर्ख, पीड़ित, पराधीन, क्षुद्र, विकल, विह्वल, अतृप्त, असंतुष्ट, इन्द्रियों के दास, अशक्त और मनोविकारों से पीड़ित देखो तो समझना इन्होंने शक्ति का महत्व नहीं समझा और उसकी उपेक्षा—अवहेलना की है ।

यों गायत्री उपासना से मिलने वाले भौतिक, आध्यात्मिक लाभ अगणित प्रकार के हैं । उनमें ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति, सद्बुद्धि का विकास ही अपने आप में इतना बड़ा लाभ है कि अकेले उस आधार पर ही गायत्री को सर्वश्रेष्ठ मन्त्र कहा जा सकता है । प्राचीन महापुरुषों के अनुसार भी यह सत्य है । गायत्री का जप विविध फलों का प्रदाता बताया गया है ।

यों गायत्री बिल्कुल छोटा सा मन्त्र है । इसके तीन पाद या चरण होने से इसे त्रिपदा भी कहा गया है । गायत्री मन्त्र का सीधा सादा सा अर्थ है भगवान सविता के सर्व श्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं । वह हमारी बुद्धि को सद् प्रेरणा दें । इस मन्त्र के अन्तिम चरण में (धियो यो नः प्रचोदयात्) बुद्धि की माँग है । सद्बुद्धि से बढ़कर कौन सी वस्तु हो सकती है ।

मानव जीवन की महत्ता बुद्धि के उत्कर्ष में है । उस बुद्धि को यदि भगवान सूर्य जैसे तेजस्वी तत्व से प्रेरणा मिल जाय, तो उससे सब प्रकार की साधन सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं । केवल सांसारिक ही नहीं किन्तु आध्यात्मिक उन्नति भी बुद्धि को योग्य प्रकार से प्रेरणा मिलने पर ही प्राप्त होती है । स्वर्ग, आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म को न मानने वाले नास्तिक बुद्धि के आधार पर अपना विवेचन करते हैं, अर्थात् बुद्धि का आदर उनको भी अनिवार्य है । ऐसी सर्वमान्य तथा सबको माननीय 'बुद्धि' को प्रेरणा मिले, इस प्रकार की प्रार्थना का प्रतिवाद नास्तिक भी नहीं कर सकते । स्वर्ग, मोक्षादि गूढ़ वस्तुओं में विश्वास न होने के कारण नास्तिक उनका खण्डन कर सकते हैं । स्वर्ग, मोक्षादि का हर एक के अनुभव में आना भी सम्भव नहीं है । मानो यही संकट देख कर ऋषि ने गायत्री मन्त्र में 'बुद्धि' की ऐसी माँग रख दी है, जिसका विरोध या प्रतिवाद कोई भी नहीं कर सकता ।

इस मन्त्र में 'धियः' अर्थात् बुद्धि का प्रयोग बहुबचन में किया है । 'अनेक प्रकार की बुद्धि" ऐसा अर्थ उससे निकलता है । हिन्दू संस्कृति केवल आध्यात्मिकता का विचार करती है, ऐसा मानकर व्यक्ति आधिभौतिक की उपेक्षा करना अपना आदर्श बतलाते हैं । परन्तु "धियः" शब्द के प्रयोग से उसका खण्डन हो जाता है । केवल आध्यात्मिक ही नहीं किन्तु भौतिक, आर्थिक, राजकीय, सब प्रकार की बुद्धि बढ़ जाय, यह गायत्री मन्त्र की प्रार्थना है । भूत विद्या, मनुष्य विद्या, वाकोवाक्य, राशि, क्षात्र विद्या, नक्षत्र विद्या, जन विद्या इत्यादि नाम उपनिषदों में पाये जाते हैं । अर्थात् अनेक प्रकार की बुद्धि–यह अर्थ 'धियः' से लिया जाय तो उसमें अनौचित्य का कुछ भी संदेह नहीं होना चाहिए ।

नास्तिक–युग में बुद्धि की श्रेष्ठता जिस प्रकार निर्विवाद है उसी प्रकार सूर्य देवता की श्रेष्ठता भी त्रिकाल अबाधित है । सूर्य को चाहे कोई देवता न माने परन्तु उसका जागतिक जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध मानना सबको अनिवार्य है । दो दिन बादल घिरे रहें और सूर्य का दर्शन न हो तो वायु दूषित बन जाती है, बीमारियाँ फैलती हैं । अतएव सूर्य का महत्व सुस्पष्ट है । नास्तिक भी इससे इंकार नहीं कर सकता । गायत्री मन्त्र का प्रभाव निरपवाद होने से इस विषय में भी शंका होना असंभव है । आदमी जिस–जिस चीज का ध्यान करता है उस प्रकार उसकी वृत्ति बन जाती है, यह प्राकृतिक सिद्धान्त है । 'सूर्य भगवान के भास्वर तेज का हम ध्यान करते हैं, ऐसा गायत्री मन्त्र के प्रथम चरण का अर्थ है । ऐसे तेजस्वी पदार्थ का ध्यान करने वाले स्वयं तेजस्वी बनेंगे यह मानस शास्त्र अथवा मनोविज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध हो चुका है । किसी से न दबते हुए तेजस्वी रहने की किसकी इच्छा न होगी ?

प्रब्रवाम शरदः शतम् । अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।

"सौ वर्ष तक अधिकार पूर्ण वाणी से बोलते रहेंगे । सौ वर्ष तक हम दैन्य रहित जीवन बितायेंगे ।" इस प्रकार की आकाँक्षायें वेद में (वाजसनेय संहिता ३६–२४) भी स्पष्ट हैं । सूर्य तेजस्विता का प्रतीक है । वही गायत्री मन्त्र का देवता है । इस सराहनीय सर्वोच्च देवता का ध्यान मानवीय उन्नति का साधन मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । गायत्री मंत्र का देवता इस प्रकार सबके लिए सराहनीय है ।

आजकल गायत्री मन्त्र का पठन गुप्तता से किया जाना आवश्यक

बतलाया जाता है । एकान्त में इस मन्त्र का जप अकेले–दुकेले किया करते हैं । परन्तु ऊपर दिये हुए मन्त्रार्थ पर ध्यान देने से सत्य बात कुछ और ही मालूम पड़ती है । इस मन्त्र में "धीमहि" (हम ध्यान करते हैं) और "नः" (हमारी) ये बहुबचन युक्त प्रयोग इस मन्त्र की सामुदायिकता पर प्रकाश डालते हैं । वास्तव में देखा जाय तो गायत्री मन्त्र सामुदायिक प्रार्थना मन्त्र है । अकेले–दुकेले में भी इस मन्त्र का जप हानि कारक नहीं, किन्तु उस समय में भी जप कर्ता को चाहिए कि वह अपने को व्यक्तिगत रूप में न मानकर समाज का एक घटक समझकर ज़प करे । इस प्रकार गायत्री जप जैसे बने वैसे करने की शास्त्राज्ञा है–

यथा कथचिञ्जप्तैषा देवी परमपावनी ।
सर्वकामप्रदाप्रोक्ता जप्ता विधिना तु पुनर्प ।।

(विष्णु धर्मोतुरे १–१६५–१५)

इस श्लोक में मार्कण्डेय ऋषि ने वज्र राजा से निश्चय– पूर्वक कहा है कि 'गायत्री जप जैसे बने वैसे करने से भी मनुष्य को पवित्र कर उसकी सब कामनाएँ सफल बना देता है, फिर वैध रीति से जपानुष्ठान करने वाले के विषय में कहना ही क्या ?" अर्थात् जीवन व्यवसाय में फँसे हुए आदमी को भी इस मन्त्र से लाभ उठाना सहज है । बड़ा विधि–विधान और आडम्बर करने पर ही गायत्री का फल मिलता हो और जैसे तैसे जप कर लेने से पाप होता हो, सर्व साधारण में फैली हुई यह धारणा गलत है । शिक्षित अशिक्षित सभी के लिए समान रूप से फलप्रद है ।

इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है बुद्धि विवेक । गायत्री मन्त्र इसी सामर्थ्य को बढ़ाने वाला होने के कारण सभी स्तर के व्यक्तियों के लिए उपयोगी और आवश्यक है । पूर्वोक्त श्लोक में गायत्री मन्त्र की बुद्धि विवेकदायी क्षमता को ध्यान में रखते हुए ही शास्त्रकार ने हर वर्ग के हर स्तर के व्यक्तियों को गायत्री मन्त्र का जप करने का निर्देश दिया है ।

सफलता और सिद्धि के कुछ लक्षण

गायत्री उपासना से तेजस्वी बुद्धि, प्रज्ञा की प्रखरता का विकास होता है । इसलिए भारतीय संस्कृति के मनीषियों ने गायत्री को एक स्वर से परम उपास्य बताया है । गायत्री उपासना के परिणाम सामान्य बुद्धि का विकास मात्र नहीं है । इससे बौद्धिक प्रखरता तो बढ़ती ही है किन्तु

उपासना का जो सबसे बड़ा लाभ होता है, वह है आत्म शक्ति का विकास । शास्त्रकारों ने गायत्री उपासना को आत्मशक्ति के अभिवर्धन का सरल किन्तु श्रेष्ठतम उपाय बताया है ।

गायत्री उपासना से आत्मशक्ति के विकास का लाभ सर्वथा विज्ञान सम्मत है । मनीषियों का कथन है कि साधना से एक विशेष दिशा में मनोभूमि का निर्माण होता है । श्रद्धा, विश्वास तथा साधना विधि की कार्य प्रणाली के अनुसार आंतरिक क्रियाएँ उसी दिशा में प्रवाहित होने लगती हैं, जिससे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय वैसा ही रूप धारण करने लगता है । भावनाओं के संस्कार अन्तर्मन में गहराई तक प्रवेश कर जाते हैं और गायत्री साधक की मानसिक गतिविधि में आध्यात्मिकता तथा सात्विकता का प्रमुख स्थान बन जाता है और साधक में एक सूक्ष्म दैवी चेतना का अविर्भाव होने लगता है ।

इन परिवर्तनों के कारण यद्यपि साधक की आकृति या उसके शरीर में तो कोई अन्तर नहीं आता पर अभ्यंतर दृष्टि से उसमें कई परिवर्तन आ जाते हैं । आध्यात्मिक तत्वों की वृद्धि के परिणाम स्वरूप–आत्मशक्ति की अभिवृद्धि के फलस्वरूप साधक के प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय कोशों में जो परिवर्तन आते हैं उनका प्रभाव अन्नमयकोश पर बिल्कुल ही न हो ऐसा नहीं हो सकता । यह सच है कि शरीर का ढ़ाँचा आसानी से नहीं बदलता पर यह भी सच नहीं है कि आन्तरिक स्थिति में परिवर्तन के चिन्ह शरीर में जरा भी दृष्टिगोचर न हों ।

साधना की सफलता के कुछ चिन्ह शरीर में भी निश्चित रूप से प्रकट होते हैं । जैसे साधक अपने में हल्कापन, उत्साह एवं चैतन्यता अनुभव करने लगता है ।

साधक जब साधना करने बैठता है तो अपने अन्दर एक प्रकार का आध्यात्मिक गर्भ धारण करता है । तन्त्र शास्त्रों में साधना को मैथुन कहा जाता है । जैसे मैथुन को गुप्त रखा जाता है, वैसे ही साधना को गुप्त रखने का आदेश किया गया है । आत्मा जब परमात्मा से लिपटती है, उसका आलिंगन करती है, तो उसे एक अनिर्वचनीय आनन्द आता है, इसे भक्ति की तन्मयता कहते हैं । जब दोनों का प्रगाढ़ मिलन होता है, एक दूसरे में आत्मसात् होते हैं तो उस स्खलन को 'समाधि' कहा जाता है । आध्यात्मिक मैथुन का समाधि सुख अन्तिम स्खलन है । गायत्री उपनिषद्

और सावित्री उपनिषद में अनेक मैथुनों का वर्णन किया गया है । वहाँ बताया गया है कि सविता और अण्डे से बच्चा निकलता है, गर्भ से सन्तान पैदा होती है । साधक को भी साधना के फलस्वरूप एक सन्तान मिलती है, जिसे शक्ति या सिद्धि कहते हैं । मुक्ति, समाधि, ब्रह्मस्थिति, तुरीयावस्था आदि नाम भी इसी के हैं । यह सन्तान आरम्भ में बड़ी निर्मल तथा लघु आकार की होती है । जैसे अण्डे से निकलने पर बच्चे बड़े ही लुंज-पुंज होते हैं । जैसे माता के गर्भ से उत्पन्न हुए बालक बड़े ही कोमल होते हैं, वैसे ही साधना पूर्ण होने पर प्रसव हुई नवजात सिद्धि भी बड़ी कोमल होती है । बुद्धिमान साधक उसे उसी प्रकार पाल-पोष कर बड़ा करते हैं, जैसे कुशल माताऐं अपनी सन्तान को अनिष्टों से बचाती हुई पौष्टिक पोषण देकर पालती हैं ।

साधना जब तक साधक के गर्भ में पलती रहती है कच्ची रहती है, जब तक उसके शरीर में आलस्य और अवसाद के चिन्ह रहते हैं, स्वास्थ्य गिरा हुआ चेहरा उतरा हुआ दिखाई देता है, पर जब साधना पक जाती है और सिद्धि की सुकोमल सन्तति का प्रसव होता है, तो साधक में एक तेज, ओज, हलकापन, चैतन्य, उत्साह आ जाता है, वैसा जैसे कि केंचली बदलने के बाद सर्प में आता है । सिद्धि का प्रसव हुआ या नहीं, सफलता मिली या नहीं, इसकी परीक्षा इन लक्षणों से हो सकती है यह मुख्य लक्षण नीचे दिये जाते हैं-

१-शरीर में हल्कापन और मन में उत्साह होता है ।

२-शरीर में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आने लगती है ।

३-त्वचा पर चिकनाई और कोमलता का अंश बढ़ जाता है ।

४-तामसिक आहार-विहार से घृणा बढ़ जाती है और सात्विक दिशा में मन लगता है ।

५-स्वार्थ का कम और परमार्थ का अधिक ध्यान रहता है ।

६-नेत्रों में तेज झलकने लगता है ।

७-किसी व्यक्ति या कार्य के विषय में वह जरा भी विचार करता है तो उसके सम्बन्ध में बहुत सी ऐसी बातें स्वयमेव प्रतिभासित होती हैं, जो परीक्षा करने पर ठीक निकलती हैं ।

८-उनका व्यक्तित्व आकर्षक, नेत्रों में चमक, वाणी में बल, चेहरे पर प्रतिभा, गम्भीरता तथा स्थिरता होती है, जिससे दूसरों पर अच्छा

प्रभाव पड़ता है । जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आते हैं, वे उनसे काफी प्रभावित होते जाते हैं तथा उनकी इच्छानुसार आचरण करते हैं ।

९–साधक को अपने अन्दर एक दैवी तेज की उपस्थिति प्रतीत होती है । वह अनुभव करता है कि उसके अन्तःकरण में कोई नई शक्ति काम कर रही है ।

१०–बुरे कामों से उसकी रुचि हट जाती है और भले कामों में मन लगता है । कोई बुराई बन पड़ती है तो उसके लिए बडा खेद और पश्चाताप होता है । सुख के समय वैभव में अधिक आनन्द न होना और दुःख, कठिनाई तथा आपत्ति में धैर्य खोकर किंकर्तव्यविमूढ़ न होना उसकी विशेषता होती है ।

११–भविष्य में जो घटनाएँ घटित होने वाली हैं, उनका उसके मन में पहले से ही आभास आने लगता है । आरम्भ में तो कुछ हल्का सा ही अन्दाज होता है, पर धीरे–धीरे उसे भविष्य का ज्ञान बिल्कुल सही होने लगता है ।

१२–उसके शाप और आशीर्वाद सफल होते हैं । यदि वह अन्तरात्मा से दुखी होकर किसी को शाप देता है तो उस व्यक्ति पर विपत्तियाँ आती हैं और प्रसन्न होकर जिसे वह सच्चे अन्तःकरण से आशीर्वाद देता है, उसका मंगल होता है, उसके आशीर्वाद विफल नहीं होते ।

१३–वह दूसरों के मनोभावों को चेहरा देखते ही पहिचान लेता है । कोई व्यक्ति कितना ही छिपावे, उसके सामने वह भाव छिपते नहीं । वह किसी के भी गुण, दोषों, विचारों तथा आचरणों को पारदर्शी की तरह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देख सकता है ।

१४–वह अपने विचारों को दूसरों के हृदय में प्रवेश कर सकता है । दूर रहने वाले मनुष्यों तक बिना तार व पत्र की सहायता के अपने विचार पहुँचा सकता है ।

१५–जहाँ वह रहता है, उसके आस–पास का वातावरण बड़ा शांत एवं सात्विक रहता है । उसके पास बैठने वालों को जब तक वे समीप रहते हैं अपने अन्दर एक अद्‌भुत शान्ति, सात्विकता एवं पवित्रता अनुभव होती है ।

१६–वह अपनी तपस्या, आयु या शक्ति का भाग किसी को दे सकता है और उसके द्वारा दूसरा बिना प्रयास या स्वल्प प्रयास में ही शक्ति प्राप्त कर अधिक लाभान्वित हो सकता है । ऐसे व्यक्ति दूसरों पर

शक्तिपात भी कर सकते हैं ।

१७–उसे स्वप्न में या जाग्रत अवस्था में या ध्यान की स्थिति में रंग बिरंगे प्रकाश पुंज, दिव्य ध्वनियाँ, दिव्य प्रकाश एवं दिव्य वाणियाँ सुनाई पड़ती हैं । कोई अलौकिक शक्ति उसके साथ बार–बार छेड़खानी, खिलवाड़ करती हुई सी दिखाई पड़ती है । उसे अनेकों प्रकार के ऐसे दिव्य अनुभव होते हैं जो बिना अलौकिक शक्ति के प्रभाव से साधारणतः नहीं होते ।

साधकों के स्वप्न निरर्थक नहीं जाते

इसका कारण यह है कि गायत्री साधक में उसकी साधना से अद्भुत परिवर्तन आते हैं । उसकी सूक्ष्म शक्तियों का विकास होता है और उसके आन्तरिक क्षेत्र में आध्यात्मिकता एवं सात्विकता का प्रमुख स्थान बन जाता है । जाग्रत अवस्था की भाँति स्वप्नावस्था में भी उसकी क्रियाशीलता सारगर्भित होती है और उसे सार्थक स्वप्न भी दिखाई देने लगते हैं ।

गायत्री साधकों को साधारण व्यक्तियों की तरह निरर्थक स्वप्न प्रायः बहुत कम आते हैं । उनकी मनोभूमि ऐसी अव्यवस्थित नहीं होती, जिसमें चाहे जिस प्रकार के उल्टे सीधे स्वप्नों का उद्भव होता हो । जहाँ व्यवस्था स्थापित हो चुकी है, वहाँ की क्रियायें भी व्यवस्थित होती हैं । गायत्री साधकों के स्वप्न को हम बहुत समय से ध्यानपूर्वक सुनते रहे हैं और उनके मूल कारणों पर विचार करते रहे हैं । तदनुसार हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि इन लोगों के स्वप्न निरर्थक बहुत कम होते हैं, उनमें सार्थकता की मात्रा ही अधिक रहती है ।

निरर्थक स्वप्न अत्यन्त अपूर्ण होते हैं । उनमें किसी बात की छोटी सी झाँकी होती है, फिर तुरन्त उनका तारतम्य बिगड़ जाता है । दैनिक व्यवहार की साधारण क्रियाओं की सामान्य स्मृति मस्तिष्क में पुनः–पुनः जाग्रत होती रहती है और भोजन, स्नान, वायु–सेवन जैसी साधारण बातों की दैनिक स्मृति के अस्त–व्यस्त स्वप्न दिखाई देते हैं, ऐसे स्वप्नों को निरर्थक कहा जा सकता है । सार्थक स्वप्न कुछ विशेषता लिए हुए होते हैं, उनमें कोई विचित्रता, नवीन घटनाक्रम एवं प्रभावोत्पादक क्षमता होती है । उन्हें देखकर मन में भय, शोक, चिन्ता, क्रोध, हर्ष, विषाद, लोभ, मोह आदि के भाव उत्पन्न होते हैं । निद्रा त्याग देने पर भी उनकी छाप मन पर बनी रहती है और चित्त में बार–बार यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस स्वप्न का अर्थ क्या है ?

साधकों के सार्थक स्वप्नों को चार भागों में विभक्त किया जा

सकता है – (१) पूर्वसञ्चित कुसंस्कारों का निष्कासन, (२) श्रेष्ठ तत्वों की स्थापना का प्रकटीकरण, (३) किसी भी भविष्य सम्भावना का पूर्वाभास, (४) दिव्य दर्शन । इन चार श्रेणियों के अन्तर्गत विविध प्रकार के सभी सार्थक स्वप्न आ जाते हैं ।

(१) **कुसंस्कसरों को नष्ट करने वाले स्वप्न**–पूर्व सञ्चित कुसंस्कारों का निष्कासन इसलिए होता हैं कि गायत्री–साधना द्वारा आध्यात्मिक नये तत्वों की वृद्धि साधक के अन्तःकरण में हो जाती है । जहाँ एक वस्तु रखी जाती है, वहाँ से दूसरे को हटाना पड़ता है । गिलास में पानी भरा जाय तो उसमें पहले से भरी हुई हवा को हटाना पड़ेगा । रेल के डिब्बे में नये मुसाफिरों को स्थान मिलने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें बैठे हुए पुराने मुसाफिर उतरें । दिन का प्रकाश आने पर अन्धकार को भागना पड़ता है । इसी प्रकार गायत्री साधक के अन्तर्जगत में जिन दिव्य तत्वों की वृद्धि होती है, उन संस्कारों के लिए स्थान नियुक्त होने से पुर्व नियुक्त कुसंस्कारों का निष्कासन स्वाभाविक है । यह निष्कासन जाग्रत अवस्था में भी होता रहता है और स्वप्न अवस्था में भी । विज्ञान के सिद्धान्तानुसार विस्फोटक ऊष्ण वीर्य के पदार्थ जब स्थान–च्युत होते हैं तो वे एक झटका मारते हैं । बन्दूक जब चलाई जाती है, तो वह पीछे की ओर एक जोरदार झटका मारती है । बारूद जब जलती है तो एक धड़ाके की आवाज करती है, दीपक बुझते समय एक बार जोर से लौ उठाता है । इसी प्रकार कुसंस्कार भी मानस लोक से प्रयाण करते समय मस्तिष्क तन्तुओं पर आघात करते हैं और उन आघातों की प्रतिक्रिया स्वरूप जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, उसे स्वप्नावस्था में भयंकर, अस्वाभाविक, अनिष्ट एवं उपद्रव के रूप में देखा जा सकता है ।

भयानक हिंसक पशु, सर्प, सिंह, व्याघ्र, पिशाच, चोर, डाकू आदि का आक्रमण होना, सुनसान, एकान्त, डरावना जंगल दिखाई देना, किसी प्रियजन की मृत्यु, अग्निकाण्ड, बाढ़, भूकम्प, युद्ध आदि के भयानक दृश्य दीखना, अपहरण, अन्याय, शोषण, विश्वासघात द्वारा अपना शिकार होना, कोई विपत्ति आना, अनिष्ट की आशंका से चित्त घबराना आदि भयंकर दिल घबड़ा देने वाले ऐसे स्वप्न जिनके कारण मन में चिन्ता, बेचैनी, पीड़ा, भय, क्रोध, द्वेष, शोक, कायरता, ग्लानि, घृणा आदि के भाव उत्पन्न होते हैं,

वे पूर्व संचित इन्ही कुसंस्कारों की अन्तिम झाँकी का प्रमाण होते हैं । यह स्वप्न बताते हैं कि जन्म-जन्मान्तरों की संचित यह कुप्रवृत्तियाँ अब अपना अन्तिम दर्शन और अभिवादन करती हुई विदा ले रही हैं और मन ने स्वप्न में इस परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखने के साथ-साथ एक अलंकारिक कथा के रूप में किसी श्रंखलावद्ध घटना का चित्र गढ़ डाला है और उसे स्वप्न रुप में देख कर जी बहलाया है ।

कामवासना अन्य सब मनोवृत्तियों से अधिक प्रबल है । काम भोग की अनियन्त्रित इच्छाएँ मन में उठती हैं, उन सबका सफल होना असंभव है । इसलिए वे परिस्थितियों द्वारा कुचली जाती रहती हैं और मन मसोसकर वे अतृप्त, असंतुष्ट प्रेमिका की भाँति अर्न्तमन के कोपभ्वन में खटपाटी लेकर पड़ी रहती हैं । यह अतृप्ति चुपचाप नहीं पड़ी रहती, वरन् जब अवसर पाती है, निद्रावस्था में अपने मनसूबों को चिरतार्थ करने के लिए, मन के लड्डू खाने के लिए, मन चीते स्वप्नों का अभिनय रचाती है । दिन में घर के लोगों के जाग्रत रहने के कारण चूहे डरते हैं और अपने बिलों में बैठे रहते हैं, पर रात्रि को जब घर के आदमी सो जाते हैं तो चूहे अपने बिलों से निकल कर निर्भयता पूर्वक उछल-कूद मचाते हैं । कुचली हुई काम वासना भी यही करती है और "खयाली पुलाव' खाकर किसी प्रकार अपनी क्षुधा को बुझाती है । स्वप्नावस्था में सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं का देखना, उनसे खेलना, प्यार करना, रूपवती स्त्रियों को देखना, उनकी निकटता में आना, मनोहर नदी, तालाब, उपवन, पुष्प, फल, नृत्य, गीत, वाद्य, उत्सव, समारोह जैसे दृश्यों को देखकर कुचली हुई वासनायें किसी प्रकार अपने को तृप्त करती हैं । धन की, पद की, महत्व प्राप्ति की अतृप्त आकाँक्षाएँ भी अपनी तृप्ति के झूठे अभिनय रचा करती हैं । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपनी अतृप्ति के दर्द को, घाव को, पीड़ा को और स्पष्ट रूप से अनुभव करने के लिए ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं मानो अतृप्ति और भी बढ़ गई । जो थोड़ा बहुत सुख था वह भी हाथ से चला गया अथवा मनोवांछा पूरी होते-होते किसी आकस्मिक बाधा के कारण विघ्न हो गया ।

अतृप्तियों को किसी अंश में या किसी अन्य प्रकार से तृप्त करने के लिए एवं अतृप्ति को और भी उग्र रूप से अनुभव करने के लिए उपरोक्त प्रकार के स्वप्न आया करते हैं । यह दबी हुई वृत्तियाँ गायत्री

की साधना के कारण उखड़कर अपना स्थान खाली करती हैं। इसलिए परिवर्तन काल में वे अपने गुप्त रूप को प्रकट करती हुई बिदा होती हैं। तदनुसार साधनाकाल में प्रायः इस प्रकार के स्वप्न आते रहते हैं। किसी मृत प्रेमी का दर्शन, सुन्दर दृश्यों का अवलोकन, स्त्रियों से मिलना-जुलना, मनोवाँछाओं का पूरा होना, इच्छित वस्तुओं का और भी अधिक अभाव अनुभव होना आदि की घटनाओं के स्वप्न भी दिखाई देते है। इनका अर्थ है कि अनेकों दबी हुई अतृप्त तृष्णाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ, धीरे-धीरे करके अपनी बिदाई की तैयारी कर रही हैं। आत्मिक तत्वों की वृद्धि के कारण ऐसा होना स्वभाविक भी है।

दूसरी श्रेणी के स्वप्न वे होते हैं-जिनसे इस बात का पता चलता है कि अपने अन्दर सात्विकता की मात्रा में लगातार अभिवृद्धि हो रही है। सतोगुणी कार्यो को स्वयं करने या अन्य के द्वारा होते हुए स्वप्न ऐसा ही परिचय देते हैं, पीड़ितों की सेवा, अभावग्रस्तों की सहायता, दान, जप, यज्ञ, उपवास, तीर्थ, मन्दिर, पूजा, धार्मिक कर्म-काण्ड, कथा, कीर्तन, प्रवचन, माता-पिता, साधु, महात्मा, नेता, विद्वान, सज्जनों की समीपता, स्वाध्याय, अध्ययन, आकाशवाणी, देवी-देवताओं के दर्शन, दिव्य प्रकाश आदि, आध्यात्मिक, सतोगुणी, शुभ स्वप्नों में मन अपने आप अन्दर आये हुए शुभ तत्वों को देखता है और उन दृश्यों से शान्ति लाभ करता है।

तीसरे प्रकार के स्वप्न-भविष्य में घटित होने वाली किन्हीं घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। प्रातःकाल सूर्योदय से एक दो घण्टे पूर्व देखे हुए स्वप्नों में सच्चाई का बहुत अंश होता है। ब्रह्म-मुहूर्त में एक तो साधक का मस्तिष्क स्वस्थ होता है, दूसरे प्रकृति के अन्तराल का कोलाहल भी रात्रि की स्तब्धता के कारण बहुत अंशों में शांत हो जाता है। उस समय सत् तत्व की प्रधानता के कारण वातावरण स्वच्छ रहता है और सूक्ष्म जगत में विचरण करते हुए भविष्य का, भावी विचारों का बहुत कुछ आभास मिलने लगता है।

कभी-कभी अस्पष्ट और उलझे हुए ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं, जिनसे मालूम होता है कि ये भविष्य में होने वाले किसी लाभ या हानि के संकेत हैं पर स्पष्ट रूप से यह विदित नहीं हो पाता है कि इनका वास्तविक तात्पर्य क्या है। ऐसे उलझन भरे स्वप्नों के कारण होते हैं- (१) भविष्य का विधान प्रारम्भिक कर्मो से बनता है, पर वर्तमान

कर्मों से उस विधान में काफी हेर–फेर हो सकता है । कोई पूर्व निर्धारित विधि का विधान, साधक के वर्तमान कर्मों के कारण कुछ परिवर्तित हो जाता है, तो उसका निश्चित और स्पष्ट रूप बिगड़कर अनिश्चित और अस्पष्ट हो जाता है । तदनुसार स्वप्न में उलझी हुई बात दिखाई पड़ती है, (२) कुछ भावी विधान ऐसे हैं जो नये कर्मों के, नई परिस्थितियों के अनुसार बनते और परिवर्तित होते रहते हैं । तेजी, मंदा, सट्टा, लाटरी आदि के बारे में जब तक भविष्य का भ्रूण ही तैयार हो पाता है, पूर्णरूप से उसकी स्पष्टता नहीं हो पाती, तब तक उसका पूर्वाभास साधक को स्वप्न में मिले तो वह एकांगी एवं अपूर्ण होता है, (३) अपनेपन की सीमा जितने क्षेत्र में होती है, वह व्यक्ति के अहम् की एक आध्यात्मिक इकाई होती है । इतने विस्तृत क्षेत्र का भविष्य उसका अपना भविष्य बन जाता है । भविष्य सूचक स्वप्न इस अहम् के सीमा क्षेत्र तक आपको दिखाई पड़ सकते हैं, इसलिए ऐसा भी हो जाता है कि जो संदेश स्वप्न में मिला है, वह अपनेपन की मर्यादा में आने वाले किसी कुटुम्बी, पड़ौसी, रिश्तेदार या मित्र के लिए हो, (४) साधक की मनोभूमि पूर्णरूप से निर्मल न हो पाई हो, तो आकाश के सूक्ष्म अन्तराल में बहते हुए तथ्य अधूरे या रूपान्तिरित होकर दिखाई पड़ते हैं, जैसे कोई व्यक्ति अपने घर से हम से मिलने के लिए रवाना हो चुका हो तो उस व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति के आने का आभास मिले । होता यह है कि साधक की दिव्य दृष्टि दोष पूर्ण होने पर दूर चलने वाले मनुष्य पुतले से दिखाई पड़ते हैं पर उनकी शकल नहीं पहिचानी जाती । अब इस धुँधले, अस्पष्ट आभास के ऊपर हमारी स्वप्न माया एक कल्पित आवरण चढ़ा कर कोई झूँठ–मूठ की आकृति जोड़ देती है और रस्सी को सर्प बना देती है । ऐसे स्वप्न आधे सत्य आधे असत्य होते हैं । परन्तु जैसे–जैसे साधक की मनोभूमि अधिक निर्मल होती जाती है, वैसे ही उनकी दिव्य दृष्टि स्वच्छ होती जाती है और उसके स्वप्न अधिक सार्थकता युक्त होने लगते हैं ।

स्वप्न केवल रात्रि में या निद्राग्रस्त होने पर नहीं आते, वे जाग्रत दशा में भी आते हैं । ध्यान को एक प्रकार का जाग्रत स्वप्न ही समझना चाहिए । कल्पना के घोड़े पर चढ़कर हम सुदूर स्थानों के विविध, सम्भव और असम्भव दृष्य देखा करते हैं, यह एक प्रकार के स्वप्न ही हैं । निद्राग्रस्त स्वप्नों में अन्तर्मन की क्रियायें प्रधान होती हैं,

जाग्रत स्वप्नों में बहिर्मन की क्रियायें प्रमुख रूप से काम करती हैं । इतना अन्तर तो अवश्य है पर इसके अतिरिक्त निद्रा स्वप्न और जाग्रत स्वप्नों की प्रणाली एक ही है । जाग्रत अवस्था में साधक के मनोलोक में नाना प्रकार की विचारधाराएँ और कल्पनाएँ घुड़दौड मचाती हैं । यह भी तीन प्रकार की होती हैं । पूर्व कुसंसकारों के निष्कासन, श्रेष्ठ तत्वों के प्रकटीकरण तथा भविष्य के पूर्वाभास की सूचना देने के लिए मस्तिष्क में विविध प्रकार के विचार भाव एवं कल्पना चित्र आते हैं । जो फल निद्रित स्वप्नों का होता है, वही जाग्रत स्वप्नों का भी होता है ।

कभी-कभी जाग्रत अवस्था में भी कोई सूक्ष्म चमत्कारी, दैवी अलौकिक दृश्य किसी-किसी को दिखाई दे जाते हैं । इष्टदेव का किसी-किसी को चर्म चक्षुओं से दर्शन होता है, कोई भूत-प्रेतों को प्रत्यक्ष देखते हैं, किन्हीं-किन्हीं को दूसरों के चेहरे पर तेजोवलय और मनोगत भावों का आकार दिखाई देता है, जिसके आधार पर वह दूसरों की आन्तरिक स्थिति को पहिचान लेते हैं । रोगों का अच्छा होना न होना, संघर्ष में हारना-जीतना, चोरी में गई वस्तु, आगामी लाभ-हानि, विपत्ति-सम्पत्ति आदि के बारे में कई मनुष्यों के अन्तःकरण में एक प्रकार की आकाशवाणी सी होती है और वह कई बार इतनी सच्ची निकलती है कि आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है ।

यह चिन्ह तो प्रत्यक्ष प्रकट होते ही हैं । अप्रत्यक्ष रूप से अणिमा, लघिमा, महिमा आदि योग शास्त्रों में वर्णित अन्य सिद्धियों का भी आभास मिलता है । वह कभी-कभी ऐसे कार्य कर सकने में समर्थ होता है, जो बड़े ही अद्‌भुत, अलौकिक एवम् आश्चर्यजनक होते हैं

जिस समय सिद्धियों का उत्पादन एवं विकास हो रहा हो, वह समय बड़ा ही नाजुक और बड़ी ही सावधानी का है । जब किशोर अवस्था का अन्त और नवयौवन का आरम्भ होता है, उस समय वीर्य का शरीर में नवीन उद्‌भव होता है । इस उद्‌भव काल में मन बड़ा उत्साहित, काम-क्रीडा का इच्छुक और चंचल रहता है । यदि इस मनोदशा पर नियन्त्रण न किया जाय तो कच्चे वीर्य का अपव्यय होने लगता है और वह नवयुवक थोड़े ही समय में शक्तिहीन, वीर्यहीन, यौवनहीन होकर सदा के लिए निकम्मा बन जाता है । साधना से भी सिद्धि का प्रारम्भ ऐसी

ही अवस्था है, जब कि साधक अपने अन्दर एक नवीन आत्मिक चेतना अनुभव करता है और उत्साहित होकर प्रदर्शन द्वारा दूसरों पर अपनी महत्ता की छाप बैठाना चाहता है । यह क्रम यदि चल पड़े तो यह कच्चा वीर्य प्रारम्भिक सिद्धितत्व स्वल्प काल में ही अपव्यय होकर समाप्त हो जाता है और साधक को सदा के लिए छूँछ एवं निकम्मा हो जाना पड़ता है ।

संसार में जो कार्यक्रम चल रहा है, वह कर्मफल के आधार पर चल रहा है । ईश्वरीय सुनिश्चित नियमों के आधार पर कर्मबन्धन से बँधे हुए प्राणी अपना-अपना जीवन क्रम चलाते हैं । प्राणियों की सेवा का सच्चा मार्ग यह है कि उन्हें सत्कर्म में प्रवृत्त किया जाय, आपत्तियों को सहने का साहस पैदा किया जाय । यह आत्मिक सहायता हुई । तात्कालिक कठिनाइयों को हल करने वाली भौतिक सहायता देनी चाहिए । आत्मशक्ति खर्च करके कर्तव्यहीन व्यक्तियों को सम्पन्न बनाया जाय तो वह उनको और अधिक निकम्मा बनाना होगा । इसीलिए दूसरों की सेवा के लिए सद्गुण विवेकदान ही सर्वश्रेष्ठ है । दान देना हो तो धन आदि जो हो, उसका दान करना चाहिए । दूसरों का वैभव बढ़ाने में आत्मशक्ति का सीधा प्रत्यावर्तन करना अपनी शक्तियों को समाप्त करना है । दूसरों को आश्चर्य में डालना या उन पर अपनी अलौकिक सिद्धि प्रकट करने जैसी तुच्छ बातों में कष्टसाध्य आत्मबल को व्यय करना ऐसा ही है जैसे कोई मूर्ख होली खेलने का कौतुक करने के लिए अपना रक्त निकालकर उसे उलीचे । यह मूर्खता की हद है । अध्यात्म वादी दूरदर्शी होते हैं वे संसारी मान-बढ़ाई की रत्तीभर परवाह नहीं करते ।

पर आजकल समाज में इसके विपरीत धारा ही बहती दिखाई पड़ती है । लोगों ने ईश्वर-उपासना, पूजा-पाठ, जप-तप को भी सांसारिक प्रलोभनों का ही साधन बना लिया है । वे जुआ, लाटरी आदि में सफलता प्राप्त करने के लिए भजन करते हैं और देवताओं की मनौती करते हैं, उन्हें प्रसाद चढ़ाते हैं । उनका उद्देश्य किसी प्रकार धन प्राप्त करना है, चाहे वह चोरी-ठगी से मिले और चाहे जप-तप भजन से । ऐसे लोगों को प्रथम तो उपासना जनित शक्ति ही प्राप्त नहीं होती और यदि किसी कारणवश थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त हो गई तो यह उनसे ही ऐसा फूल जाते हैं और तरह-तरह के अनुचित कार्यों में उसका इस प्रकार अपव्यय

करने लगते हैं कि जो कुछ कमाई होती है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और आगे के लिए रास्ता बन्द हो जाता है । दैवी शक्तियाँ कभी किसी अयोग्य व्यक्ति को ऐसी सामर्थ्य प्रदान नहीं कर सकतीं जिससे वह दूसरों का अनिष्ट करने लग जाय ।

तान्त्रिक पद्धति से किसी का मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण करना, किसी के गुप्त आचरण या मनोभावों को जानकर उनको प्रकट कर देना और उसकी प्रतिष्ठा को घटांना आदि कार्य आध्यात्मिक साधकों के लिए सर्वथा निषिद्ध हैं । कोई ऐसा अद्भुत कार्य करके दिखाना जिससे लोग यह समझ लें कि यह सिद्ध पुरूष है, गायत्री उपासक के लिए कड़ाई के साथ वर्जित है । यदि साधक चमत्कारों के चक्कर में पड़ेंगे तो लोगों का क्षणिक कौतूहल अपने प्रति उनका आकर्षण थोड़े समय के लिए भले ही बढ़ा ले पर वस्तुतः अपनी और दूसरों की इस प्रकार भारी कुसेवा होने लगेगी ।

अतः गायत्री साधना करने वालों को उन अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों के आभास होते हैं । उसका कारण यह है कि यह एक श्रेष्ठ साधना है । जो लाभ अन्य योग साधनों से होते हैं, जो सिद्धियाँ किसी अन्य योग से मिल सकती हैं, वे सभी गायत्री साधना से मिल सकती हैं । जब साधना थोड़े दिन श्रद्धा, विश्वास और नियम पूर्वक चलती है तो आत्म शान्ति की मात्रा दिन-दिन बढ़ती रहती है । आत्मतेज प्रकाशित होने लगता है, अन्तःकरण पर चढ़े हुए मैल छूटने लगते हैं । आन्तरिक निर्मलता की अभिवृद्धि होती है । फलस्वरूप आत्मा की मन्द पड़ी ज्योति अपने असली रूप में प्रकट होने लगती है ।

अंगार के ऊपर जब राख का मोटा परत जम जाता है तो वह दाहक शक्ति से रहित हो जाता है । उसे छूने से कोई विशेष अनुभव नहीं होता, पर जब उस अंगार पर से राख का पर्दा हटा दिया जाता है तो धधकती हुई अग्नि प्रज्वलित हो जाती है । यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है । आमतौर से मनुष्य मायाग्रस्त होते हैं, भौतिक जीवन की बहिर्मुखी वृत्तियों में उलझे रहते हैं । यह एक प्रकार की भस्म का पर्दा है, जिसके कारण आत्मतेज की उष्णता एवं रोशनी की झाँकी नहीं होती । जब मनुष्य अपने को अन्तर्मुखी बनाता है, आत्मा की झाँकी करता है और साधना द्वारा अपने मैलों को हटा कर आन्तरिक निर्मलता

प्राप्त करता है तो आत्मदर्शन की स्थिति प्राप्त होती है ।

आत्मा परमात्मा का अंश है । उसमें वे सब तत्व, गुण एवं बल मौजूद हैं जो परमात्मा में होते हैं । अग्नि के सब गुण एवं बल उसकी एक चिनगारी में मौजूद होते हैं । यदि चिनगारी को अवसर मिले तो वह दावानल का कार्य कर सकती है । आत्मा के ऊपर चढ़े हुए मलों का यदि निवारण हो जाय तो वही परमात्मा का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब दिखाई देगा और फिर उसमें वे सब शक्तियाँ परिलक्षित होंगी, जो परमात्मा के अंश में होनी चाहिए ।

गायत्री शक्ति का वैज्ञानिक आधार

आधुनिक विज्ञान बाह्य उपकरणों के सहारे मनुष्य जीवन की जटिलताओं को कम करने या सरल बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं । बाह्य उपकरण अर्थात् पदार्थों के माध्यम से जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के कारण ही इसे पदार्थ विज्ञान कहा जाता है । प्राचीन काल में हमारे मनीषियों ने पदार्थ विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने के साथ-साथ चेतना को भी शोध और अन्वेषण का विषय बनाया था । इस क्षेत्र में चमत्कृत कर देने वाली प्रगति की थी ।

चेतना विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के जो विधि विधान खोजे गये उनमें मन्त्र विद्या प्रमुख मानी गई । यों सामान्य रूप से मन्त्रों का स्वरूप कुछ विशिष्ट शब्दों का समूह ही दिखाई देता है, परन्तु वास्तव में मन्त्र केवल शब्दों का समूह ही नहीं है । उनका गठन विज्ञान सम्मत प्रभाव को ध्यान में रखते हुए किया गया है । कुछ समय पूर्व तक मन्त्रों के प्रभाव और विशेषताओं को अन्धविश्वास के सिवा कुछ नहीं कहा जाता था पर अब विज्ञान भी मन्त्रों की शक्ति को प्रमाणित करने लगा है ।

मन्त्र विद्या के वैज्ञानिक जानते हैं कि जीभ से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कण्ठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दन्त, जिह्वामूल आदि मुख के अंगों द्वारा होता है । इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैले होते हैं । इस फैलाव क्षेत्र में कई ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन पर उन उच्चारणों का प्रभाव पड़ता है । जिन लोगों की कोई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ रोगी या नष्ट हो जाती हैं, उनके मुख से कुछ खास शब्द अशुद्ध या रुक-रुककर निकलते हैं । इसी को हकलाना या तुतलाना कहते हैं ।

शरीर में अनेक छोटी–बड़ी, दृश्य–अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं । योगी लोग जानते हैं कि उन कोशों में कोई विशेष शक्ति भण्डार छिपा रहता है । सुषुम्ना से सम्बद्ध षट्चक्र प्रसिद्ध हैं । ऐसी अगणित ग्रंथियाँ शरीर में हैं ! विविध शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन ग्रंथियों का शक्ति भण्डार जाग्रत होता है, मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है । गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं । इनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रंथियों से है जो जाग्रत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं । गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झंकार देता है और उससे एक ऐसी स्वर लहरी उत्पन्न होती है, जिसका प्रभाव अदृश्य जगत् के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर पड़ता है । यह प्रभाव ही हेतु है ।

दीपक राग–गाने से बुझे दीपक जल उठते हैं, मेघ–मल्हार गाने से वर्षा होने लगती है, वेणु–नाद सुनकर सर्प लहराने लगते हैं, मृग सुधि–बुद्धि भूल जाते हैं, गायें अधिक दूध देने लगती हैं । कोयल की बोली सुनकर काम भाव जाग्रत हो जाते हैं । अमेरिका के डॉक्टर हर्चिसन ने विविध संगीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की । भारतवर्ष में अनेक तान्त्रिक लोग थाली को घड़े पर रख कर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प, बिच्छु आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए, कंठमाला, विषवेल, भूतोन्माद आदि रोगी बहुत करके अच्छे हो जाते हैं । कारण यह है कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का प्रयोग करते हुए जब अपने उद्गम केन्द्र पर कुछ ही क्षणों में लौट आते हैं तो उनमें अपने प्रकार की एक विशेष विद्युत्–शक्ति भरी होती है और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उस शक्ति का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है । मन्त्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है । गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आभिर्भाव होता है । मन्त्रोच्चार में मुख के अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों में नाड़ी तन्तु कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं । उनमें स्फुरणा होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक संगीत प्रवाह ईथर तत्त्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में होने वाली विश्व परिक्रमा से वापिस आते–आते एक स्वजातीय तत्त्वों की सेना वापिस ले आता है, जो अभीष्ट उद्देश्य की

पूर्ति में बड़ी सहायक होती है । शब्द संगीत के शक्तिमान कम्पनों का पंचभौतिक प्रवाह और आत्मशक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की याचना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया सम्बन्ध, यह दोनों ही कारण साधक के लिए दैवी वरदान सिद्ध होते हैं ।

शब्द केवल जानकारी ही नहीं और भी बहुत कुछ देते हैं । अब ऐसे प्रयोग भी किये जाने लगे हैं जिनसे खाद और पानी के अलावा मधुर संगीत प्रवाह भी पौधों के विकास हेतु प्रयोग में लाये जा सकें । युगोस्लाविया में फसल को सुविकसित करने के लिए खेतों पर अमुक स्तर की वाद्य लहरियाँ ध्वनि विस्तारक यन्त्रों से प्रवाहित की गयी और उसका उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुआ ।

शब्द शक्ति से सम्भावित लाभ उठाने के लिए इस तरह के अनेकानेक प्रयोग चल रहे हैं । मन्त्र विद्या का एक आधार यह भी है कि इस विद्या के ज्ञाताओं के अनुसार मन्त्र विद्या में दो तत्वों का समावेश है :- (१) शब्द शक्ति का सूक्ष्म चेतना विज्ञान के आधार पर उपयोग (२) व्यक्ति की आन्तरिक पवित्रता एवं भावोल्लास से उत्पन्न दिव्य क्षमता का समन्वय । इन दोनों के मिलन से एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न होती है, जो कितने ही बड़े भौतिक साधनों से उपलब्ध नहीं हो सकती ।

मन्त्रों में अक्षरों के क्रम का तथा उनके उच्चारण की विशेष विधि व्यवस्था का ही अधिक महत्व है । कण्ठ, तालु, दाँत, होठ, मूर्धा आदि जिन स्थानों से शब्दोच्चारण होता है उनका सीधा सम्बन्ध मानव शरीर के सूक्ष्म संस्थानों से है । षट्‌चक्रों, उपत्यिकाओं एवं दिव्य नाड़ियों, ग्रंथियों का सूक्ष्म शरीर संस्थान अपने आप में अद्‌भुत है । इन दिव्य अंगों के साथ हमारे मुख्य यंत्र के तार जुड़े हुए हैं । जिस प्रकार टाइपराइटर की चाबियाँ दबाते चलने से ऊपर अक्षर टाइप होते चलते हैं, ठीक इसी प्रकार मुख से उच्चारण किये हुए विशेष वैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ विनिर्मित मन्त्र गुम्फन का सीधा प्रभाव उपरोक्त संस्थानों पर पड़ता है और वहाँ तत्काल एक अतिरिक्त शक्ति-तरंगों का प्रवाह चल पड़ता है । यह प्रवाह मन्त्रविज्ञानी को स्वयं लाभान्वित करता है । उसकी प्रसुप्त क्षमताओं को जगाता है । भीतर गूँजते हुए वे मन्त्र कम्पन यही काम करते हैं और जब वे बाहर निकलते हैं तो वातावरण को प्रभावित करते हैं । सूक्ष्म जगत में अभीष्ट परिस्थितियों की सम्भावनाओं का सृजन करते हैं और यदि किसी

व्यक्ति विशेष को प्रभावित करना है तो उस पर भी असर डालते हैं। मन्त्र विद्या इन तीनों प्रयोजनों को पूरा करती है।

राडार हमारे शरीर में भी विद्यमान है और वह भी यन्त्रों द्वारा बने हुए राडार की तरह काम करता है। उसे जाग्रत, सशक्त और सक्रिय बनाने के लिए मन्त्र विद्या का उपयोग किया जाता है। शब्द विद्या के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मन्त्रों के अक्षरों का चयन होता है। मन्त्र रचना कविता या शिक्षा नहीं है। शिक्षा भी उनमें हो सकती है पर वह गौण है। कविता की दृष्टि से भी मन्त्रों का महत्व गौण है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में भी २३ ही अक्षर हैं जबकि छन्द शास्त्र के अनुसार उसमें २४ होने चाहिए। इस दृष्टि से उसे साहित्य की कसौटी पर दोषयुक्त भी ठहराया जा सकता है। पर शक्ति तत्व का जहाँ तक सम्बन्ध है वह सौ टंच खरा है। उसकी सामर्थ्य का कोई पारावार नहीं।

साधारणतया ध्वनि चारों दिशाओं में फैलती है पर मन्त्रों में शब्द इस प्रकार गुम्फित होते हैं कि उसकी ध्वनि तरगे विशेष प्रकार की हो जाती हैं। गायत्री मन्त्र की ध्वनि तरगे तार के छल्ले जैसी ऊपर उठती हैं और यह सूक्ष्म अन्तराल के परमाणुओं के माध्यम से सूर्य तक पहुँचती हैं और जब यही ध्वनि सूर्य के अन्तराल में प्रतिध्वनित होकर लौटती हैं तो अपने साथ प्रकाश अणुओं की (गर्मी, प्रकाश व विद्युत सहित) फौज जप करने वाले के शरीर में उतरती चली जाती हैं। साधक उन अणुओं से शरीर ही नहीं मन और आत्मा की शक्तियों का विकास करता चला जाता है और कई बार वह लाभ प्राप्त करता है जो सांसारिक प्रयत्नों द्वारा कभी भी संभव न हो सके।

शब्द की शक्ति पर जितना गहरा चिन्तन किया जाय उतनी ही उसकी गरिमा और विलक्षणता स्पष्ट होती चली जाती है। बादलों की गरज से ऊँची इमारतें फट जाती हैं। आज की यान्त्रिक सभ्यता जितना शोर उत्पन्न कर रही है उसके दुष्परिणामों से मानव-जाति को पूरी न हो सकने वाली क्षति उठानी पड़ेगी। इस तथ्य से समस्त संसार चिन्तित है। अतिस्वन और जैट विमान आकाश में जितनी आवाज करते हैं उससे उत्पन्न होने वाली हानिकारक प्रतिक्रिया को सर्वत्र समझा जा रहा है। और इन विशालकाय द्रुतगामी वायुयानों को कोलाहल रहित बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

शब्द की सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर सूक्ष्म और विभेदन क्षमता वाली है । इस बात की निश्चित जानकारी होने के बाद ही मन्त्र विद्या का विकास भारतीय तत्वदर्शियों ने किया । यों हम जो कुछ बोलते हैं उसका प्रभाव व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप से सारे ब्रह्माण्ड पर पड़ता है । तालाब के जल में फेंके गये कंपन की लहरें भी दूर तक जाती हैं । उसी प्रकार हमारे मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द आकाश के सूक्ष्म परमाणुओं में कम्पन उत्पन्न करता है । उस कम्पन से लोगों में अदृश्य प्रेरणायें जाग्रत होती हैं । हमारे मस्तिष्क में विचार न जाने कहाँ से आते हैं, हम समझ नहीं पाते । पर मन्त्रविद् जानते हैं कि मस्तिष्क में विचारों की उपज कोई आकस्मिक घटना नहीं वरन् शक्ति परतों में आदिकाल से एकत्रित सूक्ष्म कम्पन हैं जो मस्तिष्क के ज्ञान कोषों से टकराकर विचार के रूप में प्रकट हो उठते हैं, तथापि अपने मस्तिष्क में एक तरह के विचारों की लगातार धारा को पकड़ने या प्रवाहित करने की क्षमता है ।

एक ही धारा में मनोगति के द्वारा एक सी विचारधारा निरन्तर प्रवाहित करके सारे ब्रह्माण्ड के विचार-जगत में क्रान्ति उत्पन्न की जा सकती है, उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि उन विचारों को वाणी या सम्भाषण के द्वारा ही व्यक्त किया जाये ।

'उच्चारण' और 'स्वर' में यही अन्तर है कि उच्चारण कंठ, होठ, जीभ, तालु, दातों की संचालन प्रक्रिया से निकलता है और वह विचारों का आदान प्रदान कर सकने भर में समर्थ होता है । पर स्वर अन्तःकरण से निकलता है । उसमें व्यक्तित्व, दृष्टिकोण और भाव समुच्चय भी ओत-प्रोत रहता है । इसलिए मन्त्र को स्वर कहा गया है । वेद पाठ में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित की उच्चारण प्रक्रिया का शुद्ध होना भी इसी ओर संकेत करता है । साधना क्षेत्र में स्वर का अर्थ वाक्-शक्ति के माध्यम से किये जाने वाले सशक्त जप अनुष्ठान से ही है ।

मन्त्र की जो कुछ महिमा है उसका आधार वाणी को 'वाक्' के रूप में परिणत कर देना है । इसके लिए मन, वचन और कर्म में ऐसी उत्कृष्टता का समन्वय करना पड़ता है कि वाणी को दग्ध करने वाला कोई कारण शेष न रह जाय । इतना करने के उपरान्त उसके द्वारा जपा हुआ मन्त्र सहज ही सिद्ध होता है और उच्चारण किया हुआ शब्द

असंदिग्ध रूप से सफल होता है । यदि वाणी दूषित, कलुषित, दग्ध स्थिति में पड़ी रहे तो उसके द्वारा जप किये हुए मन्त्र भी जल जायेंगे और बहुत संख्या में बहुत समय तक जप, स्तवन, पाठ आदि करते रहने पर भी अभीष्ट फल न मिलेगा ।

परिष्कृत जिह्वा में वह शक्ति है जिसके बल पर किसी भी भाषा का, कोई भी मन्त्र प्रचण्ड और प्रभावशाली हो उठता है । उसके द्वारा उच्चारित शब्द मनुष्यों के अन्तस्तल को, असीम अन्तरिक्ष को प्रभावित किये बिना नहीं रहता । ऐसी परिष्कृत वाणी–वाक् को अध्यात्म का प्राण कह सकते हैं । उसे साधक की कामधेनु एवं तपस्वी का ब्रह्मास्त्र कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है । इसी की परिमार्जित जिह्वा को "सरस्वती" कहते हैं । साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को उस मन्त्र शक्ति की दीक्षा की महत्ता समझनी चाहिए । मन्त्र की माता उसे ही मानना चाहिए, सिद्धियों का उद्गम स्थल, भगवान को द्रवित कर सकने का माध्यम उसे ही मानना चाहिए ।

मन्त्र सिद्धि में चार तथ्य सम्मिश्रित रूप से काम करते हैंः– (१) ध्वनि विज्ञान के आधार पर विनिर्मित शब्द श्रृंखला का चयन और उसका विधिवत् उच्चारण (२) साधक की संयम द्वारा निग्रहीत शक्ति और मानसिक एकाग्रता का संयुक्त समावेश (३) उपासना प्रयोग में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ उपकरणों की भौतिक किन्तु सूक्ष्म शक्ति (४) भावना प्रवाह, श्रद्धा, विश्वास एवं उच्चस्तरीय लक्ष्य दृष्टिकोण । इन चारों का जहाँ जितने अंश में समावेश होगा वहाँ उतने ही अनुपात से मन्त्र शक्ति का प्रतिफल एवं चमत्कार दिखाई पड़ेगा । इन तथ्यों की जहाँ उपेक्षा की जा रही होगी और ऐसे ही अन्धाधुन्ध गाड़ी धकेली जा रही होगी, जल्दी–जल्दी वरदान पाने की ललक लग रही होगी वहाँ निराशा एवं असफलता ही हाथ लगेगी ।

ईथर तत्व के परमाणु अत्यंत सूक्ष्म और अति संवेदन शील हैं । वे एक सैकिण्ड में ३४ अरब तक कम्पन उत्पन्न कर सकते हैं । जब यह कम्पन चरम सीमा पर पहुँचते हैं तो उनसे अखण्ड प्रकाश की किरणें निकलने लगती हैं । इन किरणों में अद्भुत गतिशीलता होती है, वे एक सैकिण्ड में प्रायः एक करोड़ मील चल लेती हैं । वायु के कम्पन नष्ट हो जाते हैं, पर ईथर के कम्पनों का कभी नाश नहीं होता । वे सदा

अमर रहते हैं । जैसे-जैसे वे पुराने होते जाते हैं वैसे-वैसे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सतह पर जाकर स्थिर हो जाते हैं । जहाँ वे बलिष्ठ होकर अपने समान धर्मी अन्य कम्पनों को अपनी ओर खींचते हैं अथवा दुर्बल होने पर दूसरों की ओर खिंच जाते हैं । इस प्रकार जीर्ण होने पर भी एक नई चेतना को संघ शक्ति के आधार पर जन्म देते हैं और ऐसे चुम्बकत्व का सृजन करते हैं जो उन शब्दों के साथ जुड़ी हुई चेतनाओं से मनुष्यों को प्रभावित कर सके, यहाँ भी सहधर्मिता का नियम लागू होता है । जिन मनुष्यों के मस्तिष्क की स्थिति उन प्राचीन किन्तु संगठित शब्द कम्पनों से मिलती-जुलती होगी, उसे मंत्र जप का समुचित लाभ प्राप्त हो जाता है । असमानता की स्थिति में कोई विचार या शब्द प्रवाह किसी को प्रभावित नहीं कर सकता केवल अपनी उपस्थिति का परिचय भर दे सकता है ।

यों शरीर भी एक छोटा किन्तु पूरा विश्व है । इसमें सभी तीर्थों के बीज पीठ विद्यमान हैं । इनमें से किसी एक अथवा एक साथ अनेक पीठों को जाग्रत एवं प्रखर बनाया जा सकता है । कोई-कोई व्यक्तित्व मूर्तिमान शक्ति पीठ होते हैं । यही सिद्ध पुरुष मानवीय चेतना में घुसा हुआ है उसे निकालने हटाने में थोड़ा-सा ही प्रबल प्रयत्न सफल हो सकता है । साधना इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए है । साधना समर में यदि आत्म-तत्व बाजी ले गया तो फिर पौराणिक समुद्र मंथन में प्राप्त १४ रत्नों में से भी अधिक मूल्य की अगणित दैवी सम्पदायें प्राप्त होती हैं । उन्हें पाकर मनुष्य आप्त काम हो जाता है फिर और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता । साधनाकाल दैवी आसुरी संघर्षों की, तुमुल युद्ध की-अंवधि है । इसमें पूरे कौशल, चातुर्य एवं साहस का प्रयोग करना पड़ता है । यह युद्ध उपेक्षा पूर्वक, ज्यों-त्यों करके, ढीले-पोले मन से बेगार भुगतने की तरह नहीं लड़ा जा सकता है । उसमें पूरे मनोयोग एवं प्रबल पराक्रम की आवश्यकता पड़ती है ।

साधना जब साधक का सर्व प्रिय विषय बन जाय-उसमें निरत रहने को स्वयमेव मन चले-उन क्षणों को घटाने की नहीं बढ़ाने की ललक रहे-उपासना से उठने पर शरीर में स्फूर्ति और मन में सरसता जगे तो समझना चाहिए कि परिपक्वता आगई और इसका श्रेयस्कर सत्परिणाम अत्यन्त सन्निकट है । आरम्भ में यह स्थिति नकली रूप में बनानी पड़ती है । थोड़े समय में वह स्थिति स्वाभाविक बन जाती है । बलपूर्वक

मार–धाड़ और धर–पकड़ द्वारा बलात्कार पूर्वक उच्चस्तरीय मनः स्थिति बनाने के काल को ही साधना काल कहते हैं, जब वह स्थिति सहज बनी रहने लगे तो समझना चाहिए कि सिद्धावस्था प्राप्त हो गई ।

आत्मा का परमात्म सत्ता के साथ घनिष्ट–एकाकार–तदात्म्य तन्मय होने की स्थिति को साधना की प्रखरता कहते हैं । जब दोनों का सघन मिलन होता है तो उसे आत्म–विभोर स्थिति को समाधि कहा जाता है । आवश्यक नहीं कि उस स्थिति में योग निद्रा अथवा मूर्छा ही आवे । ज्ञान साधना में स्थितप्रज्ञ की–कर्म साधना में अनासक्त कर्त्तव्य–परायण की–भक्ति साधना में व्यापक स्नेह सौजन्य की–स्थिति प्राप्त होती है । इससे मूर्छा तो नहीं आती पर आत्म ज्ञान का आलोक एवं संतोष समाधान का अनवरत अनुभव होता है । साधक अपने को भगवान में और भगवान को अपने में एकाकार देखता है । दोनों की इच्छाएँ एवं क्रियाएँ एक ही स्तर की होती हैं ।

इन्द्रिय संयम और मानसिक एकाग्रता की दोनों धारायें मिलकर मानवी विद्युत शक्ति का निर्माण करती हैं । बिजली ठंडे और गरम दो तारों के द्वारा प्रवाहित होती है । इसी प्रकार शरीर और मन की शक्तियों को वासना और तृष्णा में बिखरने न देने से वह सामर्थ्य जमा होती है जिसे प्राण शक्ति अथवा ओजस कहा जाता है । योगशास्त्र में साधना क्षेत्र के छात्रों को यह नियम बरतने की, शारीरिक और मानसिक संयम बरतने की प्राथमिक तैयारी करने के लिए कहा गया है । यदि इन दोनों बड़े छेदों में होकर मानवी विद्युत नष्ट होती रहे तो फिर मन्त्ररूपी इन्जन को चलाने के लिए तेल, कोयला, ईधन आदि कहाँ से आयेगा । मात्र शब्दोच्चारण का नाम ही तो मन्त्र साधना नहीं है ।

उपार्जन काल में सात्विक आहार–विहार, ब्रह्मचर्य, मौन, एकान्त सेवन, परिमार्जित दिनचर्या, मनन–चिन्तन द्वारा साधना को सींचा जाता है । उसके उपरान्त उसे सस्ती प्रशंसा लूटने के लिए दिखाये जाने वाले चमत्कारों से बचाया जाता है । सिद्धियों को लोभ–मोह के उथले प्रयोजन पूरे करने में भी खर्च किया जा सकता है और अपने को तथा दूसरों को आत्म–कल्याण की दिशा में प्रेरित करने के लिए भी उसका उपयोग हो सकता है । स्वल्प श्रम में अधिक भौतिक सफताएँ पाना कर्म विज्ञान के विपरीत है । उसके लिए यदि मन्त्र शक्ति का

प्रयोग किया जायगा तो वह देर तक टिक न सकेगी और उसी खिलवाड़ में नष्ट हो जायगी । हाँ, यदि आत्म–कल्याण के लिए उसका प्रयोग होगा तो उससे इसमें और भी तीव्रता आयेगी जैसे कि चाकू को पत्थर पर रगड़ने से उसकी धार तेज होती है और जंग छूटकर चमक आती है ।

मन्त्र सिद्धि के लिए साधक के शरीर को पोषण देने वाली उसका रक्त और ओजस बनाने वाली वस्तुओं का विशेष महत्व है । आहार से शरीर और विहार से मन परिपुष्ट होता है । पदार्थों में परसंचालित शक्ति है जिसे स्वसंचालित शक्ति के सहारे गतिशील किया जा सकता है । कोयला, तेल और पानी में भाप बनाने की शक्ति है, पर वह आग एवं प्रयोक्ता की स्वसंचालित शक्ति के सहारे ही प्रकट हो सकती है । पदार्थों की शक्ति को भी साधना काल में प्रयोग किया जाता है । अनेक विधि–निषेध एवं वस्तु प्रयोग इसी दृष्टि से बने हैं ।किस मन्त्र की सिद्धि के लिए किन पदार्थों से हवन किया जाय । आहार में क्या वस्तुएँ प्रयुक्त की जाँय । पूजा के उपकरणों में किस स्तर को प्रधानता दी जाय, आदि की विधियाँ–परसंचालित शक्ति को स्वसंचालित शक्ति का साथ देने के लिए, उभारने के लिए है । इन्जन में भाप बनाने और उसे पहिए घुमाने में लगाने की प्रक्रिया इसी प्रकार सम्पन्न होती है ।

हृदय को शिव और जिह्वा को शक्ति कहते हैं । हृदय, प्राण और जिह्वा रयि हैं । हृदय को अग्नि, जिह्वा को सोम कहते हैं । दोनों का समन्वय धन और ऋण विद्युत धाराओं के मिलने से जो शक्ति प्रवाह उत्पन्न करता है, वही मन्त्र के चमत्कार रूप में देखा जा सकता है ।

वाणी से उपासना करना पर्याप्त नहीं, उसे 'वाक्' बनाकर ही इस योग्य बनाया जा सकता है कि अध्यात्म पथ पर बढ़ते हुए साधक को कुछ कहने लायक सफलता मिल सके । आयुर्वेद में सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, अभ्रक, पारद आदि की भस्म बनाकर उनके सेवन का विधान है । विषों का भी बड़ा लाभ बताया गया है, पर वह सम्भव तभी होता है जब उन विषों को विधान पूर्वक शुद्ध किया जाय । वाणी एक मूल पदार्थ है । शोधित होने पर वह अमृत बन जाती है और विकृत होने पर विष का काम करती है । शोधित वाणी को ही 'वाक्' कहा गया है ।

मन्त्र की शक्ति का विकास जप से होता है । जितनी अधिक घिसाई–पिसाई की जाती है उतनी ही पदार्थ की शक्ति उभरती है । ढेले

को मोड़ते-तोड़ते उसे अणु स्थिति में ले जाया जाय तो वह अणु ढेले की तुलना में अत्यधिक सामर्थ्यवान होगा । घोटने और पीसने की प्रक्रिया बहुत समय तक चलते रहने पर ही आयुर्वेदिक दवायें गुणकारी होती हैं । इस तथ्य को हर कोई जानता है ।

हाथों को थोड़ी देर लगातार घिसा जाय तो वे गरम हो जाते हैं । रगड़ से गर्मी और बिजली पैदा होती है, यह नियम विज्ञान की प्रथम कक्षा में पढ़ने वाले छात्र भी जानते हैं । जप में अनवरत उच्चारण क्रम एक प्रकार का घर्षण उत्पन्न करता है । पत्थर पर रस्सी की रगड़ पड़ने से घिसाव के निशान बन जाते हैं । श्वाँस के आवागमन तथा रक्त की भाग-दौड़ से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और उसी पर जीवन अवलम्बित रहता है । डायनमों में पहिया घूमने से बिजली उत्पन्न होने की बात सभी जानते हैं । जप में जो घर्षण प्रक्रिया गतिशील होती है, वह दौड़ लगाने पर शरीर के उत्तेजित हो जाने की तरह सूक्ष्म शरीर में उत्तेजना पैदा कर देती है और उस गर्मी से मूर्छित पड़ा अन्तर्जगत् नये जागरण का अनुभव करता है । यह जागरण मात्र उत्तेजना नहीं होती उसके साथ-साथ दिव्य उपलब्धियों की सम्भावना भी जुड़ी रहती है ।

ध्वनियाँ उतनी ही नहीं हैं जितनी कि कानों से सुनाई पड़ती हैं । कान तो एक निश्चित स्तर के ध्वनि-कम्पनों को ही सुन पाते हैं । उनकी पकड़ से ऊँचे और नीचे कम्पनों वाले भी असंख्य ध्वनि-प्रवाह होते हैं जिन्हें मनुष्य के कान तो सुन नहीं सकते, पर उनके प्रभावों को उपकरणों की सहायता से प्रत्यक्ष देखा, जाना जा सकता है । इन्हें 'सुपर सोनिक' ध्वनि तरगें कहते हैं ।

मनुष्य की ग्रहण और धारण शक्ति सीमित है । वह अपनी दुबली-सी क्षमता के लिए उपयुक्त शब्द प्रवाह ही पकड़ सके, इसी स्तर की कानों की झिल्ली बनी है । किन्तु यह संसार तो शक्ति का अथाह समुद्र है और इसमें ज्वार-भाटे की तरह श्रवणातीत ध्वनियाँ गतिशील रहती हैं । अच्छा ही हुआ कि मनुष्य की ग्रहण-शक्ति सीमित है और वह अपने लिए सीमित प्रवाह ही ले पाता है अन्यथा यदि श्रवणातीत ध्वनियाँ भी उसे प्रभावित कर सकती तो जीवन धारण ही सम्भव न हो पाता ।

शब्द की गति साधारणतया बहुत धीमी है । वह मात्र कुछ सौ मील प्रति सैकिण्ड चल पाती है । तोप चलने पर धुँआ पहले दीखता है और

धड़ाके की आवाज बाद में सुनाई पड़ती है । जहाँ दृश्य और श्रव्य का समावेश है वहाँ हर जगह ऐसा ही होगा । दृश्य पहले दीखेगा और उस घटना के साथ जुड़ी हुई आवाज कान तक पीछे पहुँचेगी ।

रेडियो प्रसारण में एक छोटी सी आवाज को विश्वव्यापी बना देने और उसे १ लाख ८६ हजार मील प्रति सैकिण्ड की चाल से चलने योग्य बना देने में इलैक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों का ही चमत्कार होता है । रेडियो विज्ञानी जानते हैं कि 'इलैक्ट्रो मैगनेटिक वेव्स' पर साउण्ड का सुपर कम्पोज रिकार्ड कर दिया जाता है और वे पलक मारते सारे संसार की परिक्रमा कर लेने जितनी शक्तिशाली बन जाती हैं ।

इलैक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों की शक्ति से ही अन्तरिक्ष में भेजे गये राकेटों की उड़ान को धरती पर से नियन्त्रित करने, उन्हें दिशा और संकेत देने, यान्त्रिक खराबी दूर करने का प्रयोजन पूरा किया जाता है । वे 'लैसर' स्तर की बनती हैं तो शक्ति का ठिकाना नहीं रहता । एक फुट मोटी लोहे की चद्दर में सुराख कर देना उनके बायें हाथ का खेल है । पतली वे इतनी होती हैं कि आँख की पुतली के लाखवें हिस्से में खराबी होने पर मात्र उतने ही टुकड़े का निर्धारित गहराई तक ही सीमित रहने वाला सफल आपरेशन कर देती हैं । अब इन किरणों का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी बहुत होने लगा है । केन्सर, आन्त्रशोथ, यकृत की विकृति, गुर्दे की सूजन, हृदय की जकड़न जैसी बीमारियों की चिकित्सा में इनका सफल उपयोग हो रहा है ।

'सुपर सोनिक' तरंगों का जप प्रक्रिया द्वारा उत्पादन और समन्वय होता है । जप के समय उच्चारण किये गये शब्द में आत्मनिष्ठा, श्रद्धा एवं संकल्प शक्ति का समन्वय होने से वही क्रिया सम्पन्न होती है, जैसी रेडियो स्टेशन पर बोले गये शब्द से जो विशिष्ट विद्युत शक्ति के साथ मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली हो उठते हैं और पलक मारते समस्त भूमण्डल में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं । जप प्रक्रिया में एक विशेषता यह है कि उससे न केवल समस्त संसार का वातावरण प्रभावित होता है, वरन् साधक का व्यक्तित्व भी झनझनाने, जगमगाने लगता है जबकि रेडियो स्टेशन से प्रसारण तो होता है पर कोई स्थानीय विलक्षणता दिखाई नहीं पड़ती । लैसर–रेडियम किरणें फेंकने वाले यन्त्रों में कोई निजी प्रभाव नहीं देखा जाता । वे उन स्थानों को ही प्रभावित करते हैं जहाँ उनका

आघात लगता है । जप–क्रिया में साधक को और वातावरण को प्रभावित करने की वह दुहरी शक्ति है–जो नव वैज्ञानिकों के सामान्य यन्त्र उपकरणों में नहीं पाई जाती ।

जप योग में शब्द–शक्ति के इसी प्रभाव को काम में लाया जाता है । मन्त्रों के जप से साधना में एक ऐसी चेतनाशक्ति का उद्भव होता है, जो जप कर्त्ता के शरीर एवं मन में विचित्र प्रभाव की हलचलें उत्पन्न करती है और अनन्त आकाश में उड़कर विशिष्ट व्यक्तियों को, विशेष परिस्थितियों को तथा समूचे वातावरण को प्रभावित करती है ।

कहा जा चुका है कि मन्त्रों का चयन ध्वनि विज्ञान को आधार मानकर किया गया है, अर्थ का समावेश जौहर है । गायत्री मन्त्र की सामर्थ्य अद्भुत है, पर उसका अर्थ अति सामान्य है । इसी अर्थ प्रयोजन को व्यक्त करने वाले मन्त्र श्लोक हजारों हैं । हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसी कविताओं की कमी नहीं जिसमें सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई हो । फिर उन सब कविताओं को गायत्री के समकक्ष क्यों नहीं रखा जाता और क्यों नहीं माना जाता ? वस्तुतः मन्त्र द्रष्टाओं की दृष्टि में शब्दों का गुन्थन ही महत्त्वपूर्ण रहा है । उनका सृजन यह ध्यान में रखकर किया गया है कि उनका उच्चारण किस स्तर का शक्ति कंपन उत्पन्न करता है और उनका जप–कर्त्ता, बाह्य वातावरण तथा अभीष्ट प्रयोजन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

मानसिक, वाचिक और उपांशु जप में ध्वनियों के हल्के भारी किये जाने की प्रक्रिया काम में लायी जाती है । वेद मन्त्रों के अक्षरों के साथ–सांथ उदात्त–अनुदात्त और स्वरित क्रम से उनका उच्चारण नीचे, ऊँचे तथा मध्यवर्ती उतार–चढ़ाव के साथ किया जाता है । उनके सस्वर उच्चारण की परम्परा है । यह सब विधान इसी दृष्टि से बनाने पड़े हैं कि उन मन्त्रों का जप अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने वाला शक्ति प्रवाह उत्पन्न कर सके ।

मन्त्र जप की दुहरी प्रतिक्रिया होती है । एक भीतर दूसरी बाहर । आग जहाँ जलती है उस स्थान को गरम करती है, साथ ही वायुमण्डल में ऊष्मा बखेरकर अपने प्रभाव क्षेत्र को भी गर्मी देती है । जप का ध्वनि प्रवाह समुद की गहराई में चलने वाली जल धाराओं की तरह तथा ऊपर आकाश से छितराई हुई उड़ने वाली हवा की परतों की तरह अपनी

हलचलें उत्पन्न करता है । उनके कारण शरीर में यत्र–तत्र सन्निहित अनेकों 'चक्रों' तथा 'उपत्यिका' ग्रन्थियों में विशिष्ट स्तर का शक्ति संचार होता है । लगातार एक नियमित क्रम से चलने वाली हलचलें ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जिन्हें रहस्यमय ही कहा जा सकता है । पुलों पर सैनिकों को पैरों को मिलाकर चलने से उत्पन्न क्रमबद्ध ध्वनि न उत्पन्न करने के लिए इसलिए मना किया जाता है कि इस साधारण सी प्रक्रिया से पुल तोड़ देने वाला असाधारण प्रभाव उत्पन्न हो सकता है ।

जप लगातार करना पड़ता है और एक ही क्रम से इस क्रिया के परिणामों को विज्ञान की प्रयोगशाला में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है । एक टन भारी लोहे का गार्टर किसी छत के बीचों–बीच लटका दिया जाय और उस पर पाँच ग्राम भारी हल्के से कार्क के लगातार आघात लगाने प्रारम्भ कर दिये जायें तो कुछ ही समय में वह सारा गार्टर काँपने लगेगा । यह लगातार एक गति से आघात क्रम से उत्पन्न होने वाली शक्ति का चमत्कार है । मन्त्र जप यदि विधिवत् किया गया है तो उसका परिणाम भी यही होता है । सूक्ष्म शरीर में अवस्थित चक्रों और ग्रन्थियों को जप ध्वनि का अनवरत प्रभाव अपने ढंग से प्रभावित करता है और उत्पन्न हुई हलचल उनकी मूर्छना दूर करके जागृति का अभिनव दौर उत्पन्न करती है । ग्रन्थिभेदन तथा चक्र जागरण का सत्परिणाम जपकर्त्ता को प्राप्त होता है । जपे हुए यह दिव्य संस्थान साधक में आत्म–बल का नया संचार करते हैं । उसे ऐसा कुछ अपने भीतर जगा, उगा प्रतीत होता है जो पहले नहीं था । इस नवीन उपलब्धि के लाभ भी उसे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होते हैं ।

टाइप राइटर के उदाहरण से इस तथ्य को और भी अच्छी तरह से समझा जा सकता है । उँगली से चाबियाँ दबाई जाती हैं और कागज पर तीलियाँ गिरकर अक्षर छापने लगती हैं । मुख में लगे उच्चारण में प्रयुक्त होने वाले कलपुर्जो को टाइप राइटर की कुञ्जियाँ कह सकते हैं । मन्त्रोच्चार उँगली से उन्हें दबाना हुआ । यहाँ से उत्पन्न शक्ति प्रवाह नाड़ी तन्तुओं की तीलियों के सहारे सूक्ष्म चक्रों और दिव्य ग्रन्थियों तक पहुँचता है और उन्हें झकझोर कर जगाने, खड़ा करने में संलग्न होता है । अक्षरों का छापना वह उपलब्धि है जो इन जाग्रत चक्रों द्वारा रहस्यमयी सिद्धियों के रूप में साधक को मिलती है । यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि यदि जप

योग को विधिवत् साधा गया होगा तो उसका सत्परिणाम उत्पन्न होगा ही ।

पुलों पर होकर गुजरती हुई सेना को पैर मिलाकर चलने पर उत्पन्न होते ध्वनि प्रवाह को उत्पन्न करने की मनाही कर दी जाती है । पुलों पर से गुजरते समय वे बिखरे हुए, स्वच्छन्दतापूर्ण कदम बढ़ाते हैं । कारण यह है कि लेफ्ट राइट के ठीक क्रम तालबद्ध पैर पड़ने से जो एकीभूत शक्ति उत्पन्न होती है उसकी अद्भुत शक्ति के प्रहार से मजबूत पुलों में दरार पड़ सकती है और भारी नुकसान हो सकता है । मन्त्र जप के क्रमबद्ध उच्चारण से उसी प्रकार का तालक्रम उत्पन्न होता है और उसके फलस्वरूप शरीर के अन्तः संस्थानों में विशिष्ट हलचलें उत्पन्न होती है । यह हलचलें उन अलौकिक शक्तियों की मूर्छना दूर करती हैं, जो जाग्रत होने पर सामान्य मनुष्य को असामान्य चमत्कारों से सम्पन्न सिद्ध कर सकती हैं ।

इन्ही वैज्ञानिक कारणों से सभी धर्मो ने अपनी उपासना पद्धति में मन्त्रों का समावेश किया है चाहे वह हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध या बहाई कोई भी क्यों न हो । सभी धर्मो में मन्त्र जप अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है । इन सभी मंत्रों के अपने-अपने प्रभाव और विशेषतायें हैं । इन सभी विशेषताओं के अलावा गायत्री मन्त्र में एक विशेषता यह है कि उसमें परमात्मा से सद्बुद्धि, ज्ञान और प्रकाश की कामना की गई है । यह विशेषता उसके २४ अक्षरों के शरीर के २४ महत्वपूर्ण स्थानों की प्रतिध्वनि से उत्पन्न विशेष 'सर्किल' से इतर होती है, जिससे साधक पर तत्काल दोहरी प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है अर्थात् मन्त्र का, सृष्टि के रहस्यों के उद्घाटन का प्रभाव, जप से पापों के क्षय और पुनर्जन्म से मुक्ति के प्रभाव के साथ-साथ सांसारिक श्री, समृद्धि, शक्ति और साधनों का भी लाभ इस तरह मिलने लगता है, जिससे न तो साधक संसार में भटकता है और न सांसारिक वैभव में आसक्त होता है । यह लाभ किसी और मन्त्र में न होने से गायत्री मन्त्र को भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि महत्ता प्रदान की गई है ।

लेख के प्रारम्भ में मन्त्र की परिभाषा में यह बताया गया है कि मन्त्र वह है जो सृष्टि के यथार्थ को उजागर करता है । गायत्री मन्त्र के नियम पूर्वक जप से उत्पन्न शब्द शक्ति का चक्रवात अनन्त ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करता है । इस यात्रा में जो लहरें या स्पन्दन आगे बढ़ते हैं वे परमात्मा से अभियाचित धियः तत्व की भावना से ओत प्रोत रहते हैं ।

यह शब्द शक्ति ब्रह्माण्ड की गोलाई में परिक्रमा करके जब लौटती है तो व्यक्ति के सतोगुणी जीवन के अनेक लाभ, पूर्ववर्ती साधकों के आकाश में घूम रहे इतिहास, उनकी विचारणायें, प्रेरणायें, मन्त्र जप के साथ परिप्रेषित भाव तरंगों के साथ लौटकर साधक के मस्तिष्क से टकराने लगती हैं । गायत्री उपासना से कभी–कभी मन में एकाएक ऐसे विचार पैदा हो जाते हैं जो किसी संकट से बचाने, सफलता के लिए गूढ़ प्रेरणा देने वाले होते हैं । स्वयं उपासक समझ नहीं पाता कि यह विचार कहाँ से आ गया । पर ध्वनि और मन्त्र का यही विज्ञान उसका कारण होता है, जिससे उपासक को विलक्षण स्वप्न, विलक्षण ध्वनियौंदिकदर्शन, पुलक और प्रकाश के दर्शन होते हैं । इस प्रक्रिया में यदि साधक की अपनी मनः स्थिति इस तरह की हो कि वह बुराइयों को संकल्प पूर्वक निकाल फेंकने और मन को पारमार्थिक क्रियाकलापों में लगाकर रखने में शिथिल न पड़े तो वह कुछ ही समय में गायत्री उपासना के चमत्कारी लाभों का अनुभव करने लगता है ।

इन सभी कारणों से गायत्री को सर्वश्रेष्ठ उपासना कहा गया है । पुराणों में उल्लेख है कि सुरलोक में देवताओं के पास कामधेनु गौ है वह अमृतोपम दूध देती है जिसे पीकर देवता लोग सदा सन्तुष्ट, प्रसन्न तथा सुसम्पन्न रहते हैं । इस गौ में यह विशेषता है कि उसके समीप कोई अपनी कुछ कामना लेकर जाता है तो उसकी इच्छा तुरन्त पूरी हो ही जाती है । कल्प वृक्ष के समान कामधेनु गौ भी अपने निकट पहुँचने वालों को मनोवांछा पूरी करती है ।

यह कामधेनु गौ गायत्री ही है । इस महाशक्ति की जो देवता दिव्य स्वभाव वाला मनुष्य उपासना करता है, वह माता के स्तनों के समान आध्यात्मिक दुग्धधारा को पान करता है । उसे किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं रहता । आत्मा स्वतः आनन्द स्वरूप है । आनन्द मग्न रहना उसका प्रमुख गुण है । दुःखों के हटते और मिटते ही वह अपने मूल स्वरूप में पहुँच जाता है । देवता स्वर्ग में सदा आनन्दित रहते हैं । मनुष्य भी भूलोक में उसी प्रकार आनन्दित रह सकता है, यदि उसके कष्ट कारणों का निवारण हो जाय । गायत्री कामधेनु मनुष्य के सभी कष्टों का समाधान कर देती है ।

सत्परिणाम अनायास नहीं विज्ञान सम्मत

गायत्री उपासना का भावात्मक एवं वैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से बड़ा महत्त्व है । भावना की दृष्टि से विचार किया जाय तो मानव जीवन के चरित्र उत्कर्ष का बीजमंत्र उसे कहा जा सकता है । सामान्यतया मनुष्य सबसे अधिक उपेक्षा सद्बुद्धि की ही करता है, जिस औजार से उसे निर्माण कार्य करना है उसे ही टूटा–फूटा, भौंथरा और अनगढ़ रखता है । इस भूल के फलस्वरूप ही उसे जीवन लक्ष्य से वंचित रह जाना पड़ता है ।

गायत्री मन्त्र में ईश्वर से यही माँगा गया है कि हमें आपने मानव शरीर देकर असीम अनुकंपा की है, अब मानव बुद्धि देकर हमें उपकृत और कर दीजिए ताकि हम सच्चे अर्थों में मनुष्य कहला सकें और मानव–जीवन को सार्थक बनाते हुए उसमें निहत जीवन में आनन्द का लाभ उठा सकें । गायत्री के २४ अक्षरों में परमात्मा के 'सवितुः' 'वरेण्यं' 'भर्गः' और 'देव' गुणों का चिन्तन करते हुए उन्हें अपने जीवन में धारण करने की आस्था बनाते हुए यह संकल्प किया गया है कि परमात्मा के अनुग्रह एवं वरदान की एक मात्र विभूति सद्बुद्धि को भी हम प्राप्त करते रहेंगे । अपने जीवन को उसी ढाँचे में ढालेंगे, जिसमें कि सद्बुद्धि सम्पन्न महा–मानव ढलते चले आये हैं । उसी संकल्प को बार–बार पूरी निष्ठा और भावनापूर्वक दुहराने का नाम गायत्री जप है । जप का सच्चा स्वरूप समझते हुए जो उस उपासना को करते हैं, वे उसका अनिर्वचनीय लाभ भी प्राप्त कर लेते हैं । वे इस अमृत को पाकर अमर बन जाते हैं और इस मृत्यु–लोक में रहते हुए भी दिव्य–लोक में निवास करने का स्वर्गीय आनन्द पग–पग पर अनुभव करने लगते हैं ।

वैज्ञानिक दृष्टि से गायत्री उपासना के अगणित भौतिक लाभ भी हैं । कष्टों और आपत्तियों में पड़े हुए, विपत्तियों में फँसे हुए, अभाव और दारिद्र्य से पीड़ित, असफलता की ठोकरों से विक्षुब्ध व्यक्ति यदि इस महामन्त्र का आश्रय लेते हैं तो उन्हें आशा की किरणें दृष्टिगोचर होती हैं । जिन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दीख रहा था और आपत्तियों के कुचक्र में पीसे जाने का भय सता रहा था, उन्हें इस उपासना से नया प्रकाश मिला है । अभाव ग्रस्त व्यक्ति दारिद्र्य से और रुग्ण मनुष्य पीड़ाओं से छुटकारा प्राप्त करते देखे गये हैं ।

कामनाओं की जलती हुई आग तृप्ति और शान्ति में परिणत होती देखी गई है । इस अवलम्बन का सहारा लेकर गिरे हुए लोग ऊपर उठते हैं । इस प्रकार के प्रतिफल किसी जादू से नहीं, वरन् एक वैज्ञानिक पद्धति से उपलब्ध होते हैं । गायत्री उपासना मनुष्य के विचारों और कार्यों में एक नया मोड़, एक नया परिवर्तन प्रस्तुत करती है । जिसका अन्तर्जगत् बदले तो उसके बाह्य–जीवन में परिवर्तन प्रस्तुत होना ही चाहिए, होता भी है । इसे ही लोग गायत्री माता का अनुग्रह एवं वरदान भी मानते हैं ।

अनेक व्यक्तियों को गायत्री उपासना के फलस्वरूप अनेक प्रकार के कष्टों से छुटकारा पाते और अनेक सुविधायें उपलब्ध करते हुए देखकर हमें यही अनुमान लगाना चाहिए कि उस साधन पद्धति में ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश है, जिनके कारण साधक की अन्तःभूमि में आवश्यक हेर–फेर उपस्थित होते हैं और वह असफलताओं एवं शोक संतापों पर विजय प्राप्त करते हुए तेजी से समुन्नत, समर्थ एवं सफल–जीवन की ओर अग्रसर होता है ।

गायत्री उपासना से साधकों की सामयिक कठिनाइयों का निवारण होने के समाचार आये दिन मिलते रहते हैं । इसी प्रकार प्रगति पथ पर आगे बढ़ने की सुविधा संवर्धन की ऐसी घटनाएँ भी सामने आती रहती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि किसी अदृश्य सहायता के सहारे साधक को ऐसे लाभ प्राप्त होते हैं जिनकी प्रस्तुत परिस्थितियों में केवल कल्पना भर थी–आशा नहीं । कष्ट निवारण और सुविधा संवर्धन की अनेकानेक घटनाओं को गायत्री उपासना का सत्परिणाम कहा जाता है । यह घटनाएँ किम्वदन्तियाँ नहीं हैं और न अत्युक्तियाँ । जो सामने हैं उसमें शंका करने की गुंजायश नहीं रह जाती । आये दिन उपलब्ध होती रहने वाली सूचनाओं की जाँच–पड़ताल करके यह सहज ही जाना जा सकता है कि उन घटनाओं में कुछ अलौकिकता है या यह सब ऐसे ही अनायास संयोगवश घटित हुआ समझा जा सकता है ।

ऐसा भी हो सकता है कि अनायास ही कोई संकट टल गये हों और संयोगवश ही किन्ही को कोई बड़ी उपलब्धियाँ मिल गई हों । यह भी संभव है कि उन उपलब्धियों का श्रेय भावुक लोगों ने गायत्री उपासना को दे दिया हो । कुछ ऐसे भी प्रसंग हो सकते हैं, पर अधिकांश के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे संयोगवश हुए ।

वस्तुतः इस संसार में संयोगवश कुछ भी नहीं होता । जिन्हें हम आकस्मिक या अनायास कहते हैं, वे सब भी प्रकृति के नियमानुसार ही होते हैं । अन्तर इतना ही रहता है कि जिन क्रियाओं की प्रतिक्रिया का अपनी स्वल्प बुद्धि को ज्ञान है उन्हें स्वाभाविक कहा जाता है और जो अपने अपरिचित प्रकृति नियमों के अनुसार होता है वह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है ।

गायत्री उपासना के द्वारा मिलने वाले सत्परिणाम भी लगते आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित हैं पर वस्तुतः वैसी कोई बात नहीं । जो घटित होता है वह तथ्यों पर आधारित रहता है । उपासना की प्रतिक्रिया भी इसी कसौटी पर भली प्रकार परखी जा सकती है ।

उपासना का विज्ञान गम्भीरता पूर्वक समझने का प्रयत्न किया जाय तो इसका प्रभाव साधक की अपनी मनोभूमि में सात्विकता की मात्रा का संवर्धन होता है । इसे एक ऐसी आकर्षण शक्ति कह सकते हैं जो अन्तरंग के रोम-रोम में प्रसुप्त पड़ी हुई दिव्य क्षमताओं को जगाती झकझोरती है । वे उगती बढ़ती हैं तो सहज ही उनका प्रभाव व्यक्तित्व के विभिन्न क्षेत्रों में उभार उत्पन्न करता है । विकसित व्यक्तित्व अपने चिन्तन को सुधारता है । अनुपयुक्त दृष्टिकोण अपनाते ही अवाँछनीय इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं । संचित कुसंस्कार उनका परिपोषण करते हैं । दूषित वातावरण से, दुष्ट संगति से उन्हें और अधिक बल मिलता है जिनके कारण अनावश्यक और अहितकर कामनाएँ मनः क्षेत्र पर छाई रहती हैं । इनकी पूर्ति असम्भव है । समस्त संसार का वैभव मिलकर भी एक व्यक्ति की कामनाएँ पूरी नहीं कर सकता । रावण, हिरण्यकश्यपु सहस्रबाहु और वृत्रासुर जैसे असुरों ने चरम सीमा तक वैभव संग्रह करने में सफलता पाली थी, तो भी उनका असंतोष दूर न हुआ । अन्य किसी की भी अवांछनीय मनोकामनाएँ पूरी हो सकेंगी-अथवा पूरी होने पर संतोष मिल सकेगा सम्भव नहीं । जितना मिलेगा उससे दूनी, चौगुनी तृष्णा इस उपलब्धि के साथ-साथ ही आग में घी डालने की तरह भड़क उठेगी । इस तथ्य के रहते हुए भी गायत्री उपासकों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं इसके दो कारण हैं एक तो यह कि चिन्तन में उत्कृष्टता की मात्रा बढ़ने से उचित-अनुचित का, आवश्यक-अनावश्यक का विवेक बढ़ जाता है और अवांछनीयता की आग अनायास ही ठण्डी हो जाती है । दूसरा कारण यह है कि उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिस स्तर का चिन्तन, कर्तत्व और व्यक्तित्व चाहिए वह सात्विकता की अभिवृद्धि के साथ-साथ ही

बढ़ने लगता है । अपनी पात्रता के अनुरूप ही कामना के स्तर में काट-छाँट कर ली जाती है । साथ ही प्रयासों में उपयुक्त रीति-नीति का समन्वय हो जाने से सफलता सरलतापूर्वक जल्दी और अभीष्ट मात्रा में मिलने लगती है । यह सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया ही लोगों को चमत्कार दीखती है और देवता की अनुकम्पा से मिला हुआ वरदान प्रतीत होती है ।

देवता का वरदान भी एक नियम, क्रम और सिद्धान्त पर आधारित है । उसमें न तो अंधेरगर्दी की गुंजायश है और न पक्षपात की । पूजा करने वाले को देवता निहाल करें और न करने वालों पर लाठी लेकर बरस पड़ें ऐसा हो ही नहीं सकता । यदि ऐसा होने लगेगा तो संसार में घोर अव्यवस्था और अराजकता छा जायगी । सफलताओं के लिए पात्रता और पुरुषार्थ की शर्त अनादि काल से चली आ रही है । इसी कारण लोग क्षमता बढ़ाने और साधन जुटाने के लिए प्रयत्न-पराक्रम करते हैं । यदि सृष्टि की सुव्यवस्था बनाये रहने वाली प्रथा उलट जाय और देवता के अनुग्रह से मनोकामनाएँ पूरी हो जाया करें तो फिर निश्चय ही संसार की क्रम व्यवस्था ही पूरी तरह उलट जायगी । फिर न कोई अपनी पात्रता बढ़ायेगा और न सफलता के लिए अभीष्ट पुरुषार्थ करने की आवश्यकता समझेगा । देवता यदि सस्ती पुजा-पत्री से प्रसन्न हो जाते हैं तो इतना करने में तो किसी बालक को भी कुछ कठिनाई न होगी । पूजा विधानों पर दृष्टिपात करने से वे स्वल्प समय, स्वल्प श्रम और स्वल्प खर्च में पूरे हो सकने वाले दीखते हैं । यदि स्थिति वैसी ही रही होती जैसी कि भ्रम-ग्रस्तों द्वारा समझी जाती है तो फिर संसार का एक भी आदमी उस सस्ते मोल की देव कृपा को खरीदने से वंचित न रहता और तब किसी की भी मनोकामनाएँ अपूर्ण न रहतीं ।

इसका अर्थ यह नहीं कि देवता किसी पर अनुकम्पा करते ही नहीं, दैवी अनुग्रह से अनेकों को आशाजनक लाभ मिलते हैं । पर वह सारी अनुकम्पा पद्धति विशुद्ध वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण सिद्धान्तों पर अवलम्बित है । उपासना का तत्त्वज्ञान यदि सही रीति नीति से समझा गया होगा और उसके उपचारों को यदि सही रीति से अपनाया गया होगा तो उसकी सुनिश्चित प्रक्रिया साधक के आत्म परिष्कार के रूप में प्रस्तुत होगी । साधन और सात्विकता एक ही तथ्य के दो नाम-रूप हैं । यदि साधना सच्चे सिद्धान्तों के साथ चल रही होगी तो चिन्तन और क्रिया-कलाप में

सात्विकता निश्चित रूप से छलकेगी और इस उफान का सत्परिणाम अनेकों प्रत्यक्ष आधारों के सहारे समस्याओं के समाधान और सुविधाओं के सम्वर्धन के रूप में सामने दिखाई देगा । मनः स्थिति में अन्तर आते ही परिस्थिति में अन्तर पड़ना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होगा । अन्तरंग का सुधार बाहर के सुधार का परिवर्तन उत्पन्न न करे ऐसा हो ही नहीं सकता । स्वजनों का विरोध, असहयोग, तिरस्कार प्रायः अकारण ही नहीं बरस पड़ता उसके मूल में कुछ अपनी भी अवांछनीयताएँ होती हैं । उनके दूर होते ही सम्पर्क क्षेत्र के व्यक्ति अनुकूल बनते हैं, सहयोग करते हैं । फलतः अवरोध बड़ी मात्रा में सरल हो जाते हैं । प्रगति और कुछ नहीं, प्रतिकूलताओं के घटने और अनुकूलताओं के बढ़ने का ही दूसरा नाम है । इसमें आधारभूत कारण अपना ही व्यक्तित्व होता है । उसमें तामसिकता छाई रहे तो अनेक प्रकार के विग्रह उत्पन्न होते रहेंगे और यदि सात्विकता की मात्रा बढ़ेगी तो समृद्धि और प्रगति की परिस्थितियाँ सहज ही बनती चली जायेंगी ।

देवताओं की शक्ति सूक्ष्म जगत में मौजूद है । यह देवता ईश्वर से पृथक कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । उसी महासमुद्र की लहरें हैं । उन्हें महासूर्य की विभिन्न स्तर की किरणें कहा जा सकता है । वे सृष्टि व्यवस्था को सुसंतुलित रखने का ईश्वरीय प्रयोजन पूरा करती रहती हैं । धर्म का संरक्षण और अधर्म का उन्मूलन उनकी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु रहता है । इसी आधार पर उनकी प्रसन्नता–अप्रसन्नता निर्भर रहती है । यही वह आधार है जिसके निमित्त वे सहयोग देते और विरोध करते रहते हैं । अकारण न वे किसी पर प्रसन्न होते हैं, न रुष्ट । पूजा से देवता की प्रसन्नता की संगति जुड़ती तो है पर उसके मध्य में एक और तथ्य को विद्यमान देखना पड़ेगा । सच्ची पूजा से सात्विकता की अभिवृद्धि होना सुनिश्चित है । व्यक्तित्व में यह देवत्व का अभिवर्धन ही देव अनुग्रह के रूप में प्रकट–परिणत होता है । यदि पूजा के उपचार, कर्मकाण्ड मात्र को ही देवाराधन मान लिया जाय और उतने ही भर से तरह–तरह के वरदान मिलने की बात सोची जाय तो यह मान्यता शाश्वत तथ्यों के विपरीत एक बचकानी आत्म–प्रवंचना ही कही जायगी । देवता उतने ओछे हो ही नहीं सकते कि पूजा उपचार के कर्मकाण्डों को भी भक्ति भावना मान लें, अन्तरंग की स्थिति न समझ सकें, पात्र– कुपात्र का विचार किये बिना पुजारियों पर अन्धाधुन्ध अनुकम्पा बरसाना आरम्भ करदें । यदि कोई देवता करेगा तो उसे सृष्टि विधान, ईश्वरीय नियम ।

मर्यादा के प्रतिकूल काम करने वाला कहा जायगा । ऐसी दशा में उस बेचारे की अपनी स्थिति ही बड़ी दयनीय एवं उपहासास्पद बन जायगी । तब उसे देवता कहलाने तक का अधिकार न रहेगा ।

देवताओं का अनुग्रह सीधा धन सम्पदा के रूप में नहीं मिलता । वे स्वयं दिव्य हैं, चेतन हैं । इसलिए उनके अनुदान भी दिव्य एवं चेतन ही हो सकते हैं । न वे स्वयं भौतिक पदार्थों से बने हैं और न उनके उपहार भौतिक पदार्थों या परिस्थितियों के रूप में कहीं बरसते हैं । देवता के अवतरण का क्षेत्र अन्तःकरण है । अन्तःकरण में देवत्व की कितनी किरणें उतरीं, कितनी दिव्य प्रेरणायें उभरीं, इसी पर्यवेक्षण से यह जाना जा सकता है कि किस पर किस मात्रा में देवता प्रसन्न हो रहे हैं और साधक को उनका अनुग्रह किस परिमाण में उपलब्ध हो रहा है ।

पुरुषार्थ का प्रतिफल पैसे के रूप में हाथ लगता है । उस कमाई के बदले बाजार से इच्छित वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं । श्रमिक को सीधे उसकी अभीष्ट वस्तुएँ न मिलकर वेतन के रूप में मिलती हैं । ठीक इसी प्रकार देवता अपने भक्तों को सीधे धन वैभव आदि नहीं देते । वे सत्प्रेरणाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ प्रदान करते हैं । वास्तविक वैभव यही है । विभूतियाँ इन्हीं को कहते हैं । यह सम्पदायें जिनके पास होंगी वे उस हुण्डी को किसी भी दुकान पर भुना सकते हैं और किसी भी क्षेत्र की किसी भी स्तर की सफलता प्राप्त कर सकते हैं । पिता ने बच्चे को पढ़ा दिया, पढ़ाई की कीमत पर उसने अच्छा पद और वेतन प्राप्त कर लिया । यही घुमावदार तरीका देव अनुग्रह के रूप में क्रियान्वित होता है । न तो बाप अपने सुयोग्य बेटे को उच्च पद एवं अच्छा वेतन देता है और न देवता किसी की छत पर धन वैभव बरसाते हैं । साधक को उपासना के फलस्वरूप सत्प्रेरणायें मिलती हैं । सन्मार्ग पर चलने के संकल्प उभरते हैं । सत्संकल्पों को निष्ठा पूर्वक अपनाये रहना और उन्हें क्रियान्वित करने का साहस मिलना देवताओं का प्रत्यक्ष वरदान है । इतने भरपूर अनुग्रह को पर्याप्त भी कहा जा सकता है । सत्प्रेरणाओं का क्रियान्वयन तो मनुष्य का अपना काम है । उपासना के साथ साधना का युग्म इसीलिए अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ माना गया है । साधक को मात्र पूजा कर लेने मात्र से ही निवृत्ति नही मिल जाती वरन् उपासना का प्राण कही जाने वाली जीवन साधना को भी श्रद्धा पूर्वक साधना पड़ता है । बिजली के दो तार मिलने पर करेंट बहने लगता है ।

उपासना के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सद्भावना को कार्यरूप में परिणत करना ही साधना है । साधक का उत्तरदायित्व उन दोनों ही प्रयोजनों को पूरा करता है । दोनों कदम बढ़ाते हुए ही सर्वतोमुखी प्रगति के पथ पर चलना और लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव होता है । सच्चे साधक पूजा उपासना तो करते ही हैं साथ ही देवानुग्रह के रूप में बरसने वाली दिव्य प्रेरणाओं को भी शिरोधार्य करते हैं । उनकी गतिविधियों में जिस अनुपात से देवत्व का समावेश होता है, उसी अनुपात में सुख सम्पदाओं, वैभव विभूतियों का लाभ मिलता चला जाता है ।

कोई व्यक्ति यदि पूजा–उपासना तो तरह–तरह की करता है किन्तु आत्म परिष्कार की ओर ध्यान नहीं देता तो समझना चाहिए कि उसकी उपासना देवता तक पहुँचती ही नहीं, उसे प्रसन्न करने में समर्थ हुई ही नहीं, यदि पहुँचती तो प्रयुत्तर अवश्य आता और बदले में सदभावनायें उमड़ती, सद्विवेक जागता और सत्कर्मों में असाधारण उत्साह उत्पन्न होता । जीवन क्रम स्वार्थान्ध बना रहे और लोभ–मोह से, वासना–तृष्णा से आगे की कुछ बात सूझ ही न पड़े तो समझना चाहिए कि देवाराधन के मूलभूत सिद्धाँत को समझने में साधक ने कोई भयंकर भूल की है और किसी भ्रम जंजाल की आत्म प्रवंचना में भटक रहा है । ऐसी दशा में यदि उसे निराश रहना पड़े, मनोकामना पूर्ण न होने की शिकायत करनी पड़े तो उसमें किसी को किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं होना चाहिए ।

गायत्री महाशक्ति सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री है । उसे ऋतम्भरा प्रज्ञा–ब्रह्मविद्या कहा गया है, वेद माता होने का तात्पर्य यही है कि उसकी उपस्थिति का प्रमाण, परिचय दूरदर्शी विवेकशीलता के रूप में मिलता है । यही वह हुण्डी है जिसके बदले अन्तःकरण में उल्लास उभरता है । चिन्तन में उत्कृष्टता का अनुपात बढ़ता है और क्रिया–कलाप में आदर्शवादिता की झलक क्रमशः अधिकाधिक मात्रा में मिलती चली जाती है । यही है गायत्री माता का प्रत्यक्ष अनुग्रह जिसके आधार पर साधना की सफलता को परखा जा सकता है । यह अद्भुत अनुकम्पा जिस पर बरसेगी उसे अपनी सदाशयता और कर्त्तव्यनिष्ठा से हर घड़ी आत्मसंतोष और आत्म गौरव का आनन्द मिलता रहेगा । ऐसे लोग बाह्य जगत में उच्चस्तरीय सफलताएँ पाते हैं । ओछे मनुष्य जहाँ वासना–तृष्णा की कीचड़ में लोटने को ही सब कुछ मानते हैं वहाँ आन्तरिक उत्कृष्टता के सहारे महामानव बना जा सकता है । लोक–श्रद्धा और जन सहयोग की उन्हें कमी नहीं रहती । इन उपलब्धियों के सहारे वे इतने बड़े काम कर गुजरते हैं–इतने ऊँचे स्तर तक पहुँच सकते हैं जिन्हें सामान्य लोगों की तुलना में दैवी अनुग्रह से उपलब्ध हुए

चमत्कार–वरदान मानने में कोई अत्युक्ति नहीं है ।

गायत्री उपासना के सत्परिणाम असंदिग्ध हैं । अथर्ववेद में वेदमाता के अनुग्रह से आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रव्य, ब्रह्मवर्चस इन सात लाभों का उपलब्ध होना कहा गया है । इस प्रतिपादन में रत्ती भर भी अत्युक्ति नहीं है । आये दिन मिलने वाले समाचारों से विदित होता रहता है कि माता का अंचल पकड़ने वालों को विपत्तियों से छूटने, सुविधा साधन बढ़ाने–एवं सफलताएँ पाने में आशाजनक सहायता मिली है । ऐसी घटनाओं के मूल में साधक के चिन्तन एवं चरित्र में सात्विकता की अभिवृद्धि ही मूल कारण होती है । जहाँ व्यक्तित्व निकृष्ट ही बना रहने पर कोई विशिष्ट उपलब्धि मिली हो उसे संयोगवश अन्धे के हाथों बटेर लगने की उक्ति घटित हो जाने के समान ही समझना चाहिए । गायत्री उपासना के सत्परिणाम, अध्यात्म विज्ञान के विशुद्ध तथ्य और सिद्धान्तों पर आधारित हैं । उनमें न किसी सन्देह की गुंजायश है और न आश्चर्य करने की । ऋतम्भरा प्रज्ञा को अन्तःकरण में धारण करके जीवन नीति का संचालन–यही है गायत्री का तत्वज्ञान और उसकी उपासना के आश्चर्यजनक फल का रहस्योद्‌घाटन । सच्चा गायत्री उपासक न केवल अपने लिए आहुति देकर सुख–शान्ति का उपार्जन करता है वरन् अपनी नाव में बिठाकर असंख्यों को उस पार पहुँचाने में समर्थ होता है ।

गायत्री का महात्म्य भावानात्मक दृष्टि से भी है और वैज्ञानिक दृष्टि से भी । इसी से इस महान अध्यात्म संबल को श्रद्धापूर्वक अपनाये रहने और उसे नित्य कृत्यों में स्थान दिये रहने का शास्त्रकार ने निर्देश दिया है । ऋषियों ने प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति के लिए गायत्री की निष्ठापूर्वक उपासना करने के लिए जोर दिया है और जो उस उपयोगी व्यवस्था का लाभ नहीं उठाना चाहते उनकी भूल को, कटु भर्त्सना के साथ निन्दनीय भी ठहराया है ।

गायत्री उपासना हमारे अपने हित में ही है । इस माध्यम से मनुष्य निश्चय ही अपनी बहुत आत्मोन्नति कर सकता है । जिन्होंने अभी इस मार्ग पर चलना आरम्भ नहीं किया है उन्हें चाहिए कि अवलम्बन के एक परीक्षण के रूप में वे गायत्री उपासना आरम्भ करें और देखें कि उनके उज्ज्वल भविष्य की संभावना उत्पन्न करने में कैसे आश्चर्यजनक ढंग से यह उपासना सहायक हो रही है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा